मानस सर्वस्व

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मानस-सर्वस्व

लेखक :

रामकुमार भुवालका

प्रकाशक :

भगवतीप्रसाद खेतान

यशपाल जैन

प्रस्तावना

भारत की सनातन परम्परा वेद को सर्वस्व मानती है। विदोऽखिलो धर्म्मलम्—सभी कर्तव्त-कर्मों का मूल वेद है। वेद का ही दूसरा नाम निगम है। आगम शास्त्रों को कहते हैं। कुछ लोगों का मत है कि निगम से प्राचीन आगम है। नैगमिक और आगमिक दोनों प्रकार की परम्पराएँ मिलकर भारतवर्ष में जीवन का विकास करती रही है। पुराणों में इसी समन्वित परम्परा का स्वरूप दिखाई देता है। पुराण पुराने इतिहास को कहते हैं। यह माना जाता है कि इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुबृहंयेत्। वेद वस्तुतः मन्त्र और ब्राह्मण को कहते हैं—मंत्रब्राह्मणात्मको वेदः। ऋक्, यजुः, साम, अथर्व मन्त्र भाग है और इन्हीं को ब्रह्म भी कहते हैं। इन्हीं की व्याख्या का नाम ब्राह्मण है। उपनिषद् चरम व्याख्या का नाम है। इसीलिए उसे वेदान्त भी कहते हैं। इसलिये वेद के आभोग में मन्त्र, ब्राह्मण और उपनिषद् सभी आ जाते हैं, फिर भी इधर उपनिषदों के सम्बन्ध में लोगों की धारणा यह है कि इनमें आगमिक परम्परा सुरक्षित है। जो भी हो यहाँ तो मुझे रामचरितमानस के निर्माण में तुलसीदास के संकल्प में कथित उपक्रम का स्पष्टीकरण करने के लिए थोड़ी-सी बातें कहनी पड़ी। उन्होंने मानस में अपना संकल्प इस प्रकार लिखा है :—

नानापुराणनिगमागमसम्मतंयद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति

इस संकल्प में पहली बात यह कह गई है कि इसमें जो होगा नानापुराण निगमागम सम्मत होगा। अर्थात् जो कुछ कहा जाएगा वह वेद से अनुकूल होगा। दूसरी बात यह कही गई है कि जो रामायण में कहा गया है वह भी इसमें होगा। तीसरी बात यह है कि इसमें कहीं-कहीं अन्य प्रकार से भी कहा गया है। चौथी बात यह है कि अपने अन्तःकरण के सुख के लिए यह निर्माण किया जा रहा है और जो कुछ किया जा रहा है वह अति मंजुल है। नानापुराणनिगमागम संमत का यह अर्थ नहीं है कि तुलसीदास जी ने स्थान-स्थान से इन आकूर ग्रन्थों से अनुवाद प्रस्तुत कर दिया है। भाषा निबन्ध से लोगों ने यह समझा कि जो संस्कृत में है उसे तुलसीदास भाषा में लिखना चाहते हैं इसीलिए तुलसीदास ने आधार ग्रन्थों का अनुवदन मात्र किया है। संस्कृत के कुछ पंडितों ने यह भी प्रयास किया कि मानस

के सभी वचनों का संस्कृत मूल जुटाकर एक वृहत्काय ग्रंथ प्रस्तुत कर दिया और उसके द्वारा यह प्रमाणित करना चाहा कि तुलसीदास का अपना मौलिक मानस में कुछ भी नहीं है। किन्तु ऐसे प्रयासों की कलई खुल गयी और यह स्पष्ट हो गया कि उनमें उल्टी गंगा बहायी गयी है। मानस की चौपाइयों आदि का संस्कृत में अनुवाद करके किसी कल्पित ग्रन्थ का नाम या किसी प्रथित पुस्तक का नाम नीचे लिख दिया गया है।

मानस में आधार ग्रन्थों से अनुवाद नहीं है, यह स्थापना करते हुए यह कहना प्रयोजन नहीं है कि आधार ग्रंथों के सिद्धान्तों का कथन भी इसमें नहीं किया गया है। जो कुछ है वह तुलसीदासजी की स्वकल्पना है यह भी नहीं कहना है। मानस में पूर्ववर्ती समस्त वैदिक वांमय का सारतत्व स्वयं हृदयंगम करके अपने ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसका परिणाम यह है कि मानस में भारतियों के लिए वेद का सारा नियांस प्राप्त हो जाता है। प्रत्युत कुछ महात्माओं की तो यहाँ तक धारणा है कि मानस हिन्दुओं के लिए वेद और मुसलमानों के लिए कुरान की भांति है। अर्थात् इसमें भारतवर्ष में उस समय रहने वाले सभी मतों के जनों के लिए उत्कृष्ट सिद्धांत संगृहीत है। अर्थात् तुलसीदासजी ने मानस में किसी मतधारा के अनुकूल सिद्धान्त नहीं कहे हैं प्रत्युत सभी मतों के मूल में जो प्रकृष्ट सिद्धान्त है, सभी इसमें उल्लखित है। इसके लिए उन्होंने श्रीमद्भागवत का विशेष रूप से अवलम्बन लिया है। श्रीमद्भागवत भी भक्ति का ऐसा ग्रन्थ है जिसमें सभी प्रकार की भक्ति धाराओं के अनुकूल विचार प्राप्त हो जाते हैं।

कहा जाता है कि महाभारत और पुराणों का निर्माण कर लेने पर भी जब व्यास को शांति नहीं प्राप्त हुई तब उन्होंने अपने अन्तःकरण की शान्ति के लिये श्रीमद्भागवत का निर्माण किया। व्यास ने ही ब्रह्मसूत्र का भी निर्माण किया है जिसकी व्याख्या प्रत्येक नवीन दर्शन की स्थापना करने वाला प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत अवश्य करता है। प्रस्थानत्रयी का तात्पर्य है उपनिषद, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र। भगवद्गीता महाभारत के अन्तर्गत भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन के लिए कथित गीता है। पहले के दार्शनिक इन्हीं तीन ग्रन्थों की व्याख्या करके अपनी विचारधारा का प्रतिपादन करते थे किन्तु श्री वल्लभाचार्य ने प्रस्थानत्रयी के स्थान पर प्रस्थान चतुष्टयी को मान्यता दी। अर्थात् उपर्युक्त तीन ग्रंथों के साथ व्यास के श्रीमद्भागवत को भी संनिविष्ट कर लिया—

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयाम् ।

'वेदाः" से तात्पर्य उपनिषदों से है, "श्रीकृष्ण वाक्यानि" का अर्थ भगवद्गीता है, व्याससूत्राणि का अर्थ ब्रह्मसूत्र है, व्यास की समाधिभाषा का तात्पर्य है श्रीमद्भागवत । तुलसीदास मानस में स्वांतःसुखाय, स्वान्तस्तमः शान्तये परम विश्राम की जो बात बारंबार करते हैं, वह श्रीमद्भागवत के निर्माण के द्वारा व्यास को मिलनेवाली शान्ति को विचारपथ में रखकर ही, ऐसा प्रतीत होता है ।

वल्लभाचार्य जी अविकृति परिणामवाद को मानने वाले हैं और श्रीमद्-भागवत भी अविकृत परिणामवाद को माननं वाला प्रतीत होता है। अविकृत परिणामवाद का तात्पर्य यह है कि मूलतत्व में किसी प्रकार का विकार नहीं होता है। सोने से नाना प्रकार के अलंकार बन जाते हैं और फिर उन अलंकारों को ज्यों का त्यों सोने में परिणत किया जा सकता है। ब्रह्म सृष्टि का निर्माण करने पर भी किसी प्रकार के विकार से युक्त नहीं होता। तुलसीदास की विचारधारा में भी विशेष रूप से विनयपत्रिका में इसका स्पष्ट संकेत मिलता है। किन्तु निश्चय रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि तुलसीदास किसी एक ही विचारधारा के अनुकूल बात कहने वाले हैं। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में भक्ति का सर्वसमन्वित रूप दिखाई देता है उसी प्रकार तुलसीदास के मानस में भी। यह सब कहने का तात्पर्य इतना ही है कि भारतवर्ष की नैगमिक और आगमिक परम्परा में जो कुछ कल्याणकारी, उत्तम तत्व मानव जीवन के लिए उपलब्ध है वह किसी न किसी रूप में रामचरितमानस में कथा प्रवाह के प्रसंगों में संनिविष्ट हैं। उन सबका संग्रह बहुत ही उपयोगी है पर किसी ने इस प्रकार का प्रयास आजतक नहीं किया था।

स्वर्गीय रामकुमार भुवालका ने परिणतवय में न जाने किस भगवत्प्रेरणा से इस प्रकार का कार्य करने का संकल्प किया और उन्होंने साकेतवास के पूर्व इस कार्य को संपन्न कर लिया। मेरे प्रति उनका परम सौहार्द था। उन्होंने मुझ से इस संग्रह की भूमिका लिखने के लिए कहा था, किंतु मेरे पास सामग्री भूमिका-लेखन के लिये पहुंचे इसके पूर्व ही वे दिवंगत हो गए। मैंने अपना यह पुनीत कर्तव्य समझा कि उनके सुपुत्र अभिमन्यु प्रसाद भुवालका को उस

उपयोगी मानसतत्व के संकलन को प्रकाशित करने के लिए प्रेरित करूं और पक्षाघात से पीड़ित होते हुए भी जिसके लिए प्रतिश्रुति हो चुका हूँ उसकी पूर्ति कर दूँ।

यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि भुवालका जी ने मानस का मानव जीवन के लिये सर्वोत्तोभावेन उपयोगी अंश अपने इस संकलन में संगृहीत कर दिया है और उसकी सरल और मार्मिक व्याख्या भी गद्य में कर दी है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस संकलन के द्वारा मानस प्रेमी ही नहीं, मानव जीवन के ऐहिक आमुष्मिक लाभ के लिए अन्य जन भी इसका सदुपयोग कर सकेंगे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सारा संकलन किसी प्रकार की साम्प्रदायिक विचारधारा से रहित है। किसी भी मत का माननेवाला मानव जीवन जीने के लिए इसका पारायण करके लाभान्वित हो सकता है। इसे मैं मानस-सर्वस्व और मानव-सर्वस्व दोनों ही मानता हूं।

वासन्तिक नवरात्र,
हिन्दी विभाग,
काशी विश्वविद्यालय,
वाराणसी।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

अनुक्रमणिका

राम नाम की महिमा :

बंदउं नाम राम रघुवर को

संत प्रवर गोस्वामी तुलसीदास ने जिस भाव व्यंजना के साथ राम चरित मानस की भूमिका लिखी है उससे यह स्पष्ट आभास होता है कि उनके सम्पूर्ण महाकाव्य में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम का नाम ही प्रत्येक पंक्ति में चारु चिन्तामणि की भाँति दमक रहा है। उन्होंने घोषणा भी कर दी है—

एहि महं रघुपति नाम उदारा अति पावन पुरान श्रुति सारा
मंगल भवन अमंगल हारी उमा सहित जेहि जपत पुरारी

इसमें राम नाम का ऐसा उदार (सब का मंगल करने वाला) भाव भरा हुआ है जो अत्यन्त पवित्र वेद एवं पुराणों का सार तत्व, सदा अमंगल दूर करने वाला और ऐसा मधुर है कि उसे पार्वती एवं शंकर तक सदा जपते रहते हैं।

राम शब्द र—आ—और म इन तीन वर्णों के योग से बना है। ये तीनों वर्ण त्रिशक्ति सम्पन्न हैं और इसमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों आदि-देव विराजते हैं अर्थात राम-नाम का उच्चारण ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उपासना को समाहित कर लेता है। (र-ब्रह्मा, आ-विष्णु, म-शिव)।

यही नहीं राम नाम के उच्चारण से जन्म-जन्मान्तरों के सभी पाप निकल जाते हैं क्योंकि 'रा' शब्द के उच्चारण से मुंह के खुलने पर समस्त पाप वायु द्वारा निसृत हो जाते हैं और अगला वर्ण 'म' पापों के पुनप्रवेश को रोकने के लिए कपाट का कार्य कर तन को पाप रहित कर देता है।

तुलसी 'रा' के कहत ही निकसत पाप पहाड़
पुनि आवन को चहत है देत मकार केवाड़

गोस्वामी जी ने उन 'राम' के नाम की वंदना की है जिससे अग्नि सूर्य, चंद्रमा तीन ज्योतियों का जन्म हुआ है। विश्व में सर्व प्रथम अग्नि फिर सूर्य तत्पश्चात चन्द्र की उत्पति हुई। लोक में राम नाम भृगुवंशी परशुराम तथा यदुवंशी बलराम के साथ भी संयुक्त है परन्तु वस्तुतः भानु वंशीय राम की महिमा इन सभी से श्रेष्ट है तभी तो तुलसीदास जी ने स्पष्टतः लिखा है कि मैं श्री रघुवर राम के नाम की वंदना करता हूं, भृगवर या यदुवर के नाम की नहीं—

वंदउं नाम राम रघुबर को हेतु कृसानु भानु हिमकर को

राम का नाम कृसानुवंशीय परसुराम भानु वंशीय राम तथा हिमकर वंशीय बलराम के परम तेज का मूल है।

यह राम नाम त्रिदेवमय (विधि-हरि-हर) होने के अतिरिक्त वेदों के प्राण ऊंकार प्रणव के समान है। तथा निर्गुण, अनुपम तथा गुणों का आगार है—

विधि ही हर मय वेद प्रान सो अगुन अनुपम गुन निधान सो

इसी कारण तो इसे भगवान शिव अन्य सहस्रनामों की भाँति कह कर पार्वती को उपदेश देते हैं।

सहसनाम सम सुनि सिव बानी जपि जेई पिय संग भवानी

X X X

महामंत्र सोइ जपत महेसू

इस नाम की महिमा की अनंतता के उदाहरणों से हमारे धर्म शास्त्र भरे पड़े हैं। गोस्वामीजी ने इसकी सूची भी बड़े ही भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत की है—

महिमा जासु जान गनराऊ प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ
जान आदिकवि नाम प्रताप भयउ सुद्ध करि उलटा जापू

गणेशजी की सर्वप्रथम वंदना इसीलिए की जाती है कि उन्होंने इस नाम का महात्म्य समझा था।

एक बार सभी देवों में इस बात के लिए विवाद उठ खड़ा हुआ कि सबों में प्रथम पूज्य कौन है। अन्त में निश्चय हुआ कि समस्त ब्रह्माण्ड की जो सबसे पहिले परिक्रमा कर लेगा वही पूज्य होगा। सभी देवता अपने अपने वाहनों के साथ निकल पड़े। सभी के वाहन भी द्रुतगामी थे, पर गणेशजी बेचारे क्या करते ? उनकी सवारी तो चूहा था। इतने में नारद जी वहां आ गये। उन्होंने गणेशजी को चिन्ता में पड़ा हुआ देख कर कहा— आप किस चिन्ता में पड़े हैं, राम नाम लिख कर उसकी ही परिक्रमा करिए। राम नाम में तो सारी सृष्टि निहित है। बस फिर क्या था गणेश ने वैसा ही किया और इस प्रकार ब्रह्माण्ड की परिक्रमा सर्व प्रथम करने के कारण सर्वप्रथम पूज्य बन गये।

जब आदि कवि उलटे नाम को जप कर पवित्र ऋषि हो गये तो इसके महात्म्य के अन्य उदाहरणों की क्या गिनती। नाम के प्रभाव से ही 'कालकूट फलदीन्ह अभी को' हलाहल भी अमृत का आनन्द देता है। इसके सुमिरण से सबको सुख की प्राप्ति होती है तथा लोक का सुख और परलोक का

परमसुख (मोक्ष) सहज ही मिल जाता है क्योंकि यह नाम मात्र सर्वत्र ही सुलभ रूप में उच्चारित किया जा सकता है—

सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू लोक लाहु परलोक निबाहू

गोस्वामीजी ने नाम-महिमा को अनेक उदाहरणों से पुष्ट किया है—

सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी
नारद जानेउ नाम प्रतापू जग प्रिय ही हरिहर प्रिय आपू
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू भगत सिरोमनि भे प्रहलादू
ध्रुव सगलानि जपेउ ही नाऊं पायउ अचल अनुपम हाऊं
सपितु अजामिलु गनु गनिकाऊ भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊं

'अमंगल साज' के बावजूद 'मंगल रासी' के रूप में अविनाशी शिव का गौरव नाम के कारण ही है। शुक, सनकादिक (सनक, सनन्दन, सनातन और सनतकुमार) ऋषि, सिद्ध, मुनि और योगीगण सभी तो नाम के बल पर ही ब्रह्म सुख भोग रहे हैं। नाम के प्रताप को जान कर ही नारदजी ने शिव और विष्णु की समान रूप से प्रियता प्राप्त की।

ध्रुव ने अपमान के कारण (अपनी विमाता सुरुचि द्वारा तिरस्कृत होने के कारण) ही हरि का नाम जपा जिसका फल यह हुआ कि उन्होंने कभी न डिगने वाला अटल स्थान प्राप्त कर लिया। अधम अजामिल (अंतिम समय अपने पुत्र नारायण को पुकारने के कारण) गज (ग्राह से युद्ध करते हुए थक कर नारायण नाम पुकारने पर) और जीवन्ती गणिका (सुग्गे को राम-राम सिखाने के कारण) नाम प्रभाव से ही मुक्ति प्राप्त कर सके। इसके अतिरिक्त नाम की महिमा इतनी व्यापक है कि बड़े-बड़े कवि तथा संत क्या स्वयं राम भी उसका गुण नहीं गा सकते तभी तो तुलसीदास जी ने भी इसकी व्यापकता इस प्रकार व्यक्त की—

कहाँ कहाँ लगि नाम बड़ाई राम न सकहिं नाम गुन गाई

राम नामका जप संप्रदाय निरपेक्ष होकर निराकारवादियों, साकारवादियों, हिन्दुओं, अहिन्दुओं सबके लिए हितप्रद है। यह प्रगतिशीलों में प्रगतिशील है और रम्यों में परम रम्य है। प्रभाव में परमशक्तिशाली यह नाम उच्चारण में अत्यंत सुगम है और मंत्रराज होते हुए भी जप की दृष्टि से देश काल पात्र के बँधनों से युक्त है अर्थात हर कहीं हर समय हर किसी के द्वारा जपा जा सकता है। वह एक साथ ही सगुण निर्गुण दोनों ब्रह्म का द्योतन करता है। सत्यत्व का प्रबोधक होते हुए भी यह शिवत्व का संस्थापक हो जाता है। उनकी रट से परमात्मा सत्य-शिव-सुन्दर के रूप में शरीरी होकर हमारे समक्ष उपस्थित

हो जाता है। इन्हीं कारणों से अन्य नामों की अपेक्षा राम का नाम श्रेष्ठ कहा गया है।

राम नाम का आवागमन की बीजरूपी वासनाओं को भूंज देने वाला, सुख संपत्ति का अर्जन कराने वाला तथा यमदूतों को भगा देने वाला है—

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसंपदाम्
तर्जनं यमदूतानां राम रामेति गर्जनम्
(राम रक्षा स्तोत्र)

राम नाम का अद्‌भुत महात्म्य है। भगवान से मिलने का यही एकमात्र आधार है।

नाम कामतरु काल कराला सुमिरत समन सकल जग जाला

भवसागर का विषम ज्वार नाम लेने से स्वत: शांत हो जाता है।

नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं करहु विचार सुजन मन माहीं

राम से अधिक राम का नाम व्यापक और फलदायक है। 'ब्रह्म राम ते नामु बड़' क्योंकि राम ने तो केवल एक ऋषि पत्नी का ही उद्धार किया था परन्तु रामका नाम उच्चारण कर असंख्य लोग कष्ट तथा भव व्याधियों से मुक्त हो चुके हैं—

राम एक तापस तिय तारी नाम कोटि खल कुमति सुधारी

गोस्वामीजी अपने आराध्य रामजी के नाम की महता व्यक्त करने के लिए अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। रामजी के नाम में मात्र दो अक्षर है। दोनों अक्षर भक्तों को शीतलता प्रदान करने वाले हैं। गोस्वामी जी कहते हैं कि राम की भक्ति ऐसी है जैसे वर्षा ऋतु, भगवान के सुदात्य (भक्त) ऐसे हैं जैसे धान के पौधे और राम शब्द के दोनों अक्षर (राम।) ऐसे हैं जैसे सावन —भादों के महीने। सावन भादों की वर्षा से धान बढ़ता है, फूलता है और फलता है वैसे ही सच्चे भक्तों के हृदय भी राम नाम जपने से सदा मगन रहते हैं—

बरषा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास
राम नाम बर बरन जुग, सावन भादव मास

गोस्वामीजी कहते हैं कि रामजी के नाम के दोनों अक्षर कहने सुनने एवं देखने में तो मुझे इतने प्यारे लगते हैं जैसे राम और लक्ष्मण की जोड़ी। ये दोनों अक्षर अलग नहीं किये जा सकते हैं। दोनों की प्रीति अक्षुण है। जिस प्रकार ब्रह्म एवं जीव को पृथक नहीं किया जा सकता है वैसे ही ये

दोनों अक्षर पृथक भाव से संयुक्त है। राम का नाम संसार का पालन करने वाला है। भक्ति रूपी सुन्दर नारी के दोनों कानों में शोभित होने वाले दो कर्णफूलों के समान रामजी के नाम के दोनों अक्षर हैं।

श्रद्धालु जन इन दोनों अक्षरों पर अपनी अमित आस्था रखें, इसलिए नारदजी की याचना पर स्वतः राम ने इस नाम को अन्य नामों की अपेक्षा श्रेष्ठ बना दिया है। नारदजी ने प्रार्थना की—

जदपि प्रभु के नाम अनेका श्रुति कह अधिक एक ते एका
राम सकल नामन्ह ते अधिका होउ नाथ अध खग गन बधिका

इस पर रामजी ने एवमस्तु कह कर अपनी स्वीकृति भी दे दी—

एवमस्तु मुनी सन कहेउ कृपा सिन्धु रघुनाथ

नारदजी के इस कथन के कारण ही राम नाम की इतनी महिमा बढ़ गई कि भारतीय व्यक्ति के जन्म से अर्थात जन्म समय के सोहर गीत 'हो रामा' से लेकर मृत्यु समय के सतत घोष 'राम नाम सत्य है' तक भारतीय चेतना का प्रधान प्रतीक बन गया है। राम के नाम का प्रभाव अद्‌भुत है। पर राम नाम की महिमा का सर्वोपरि प्रभाव देखना हो तो श्रद्धावली आँखें चाहिये। श्रद्धा एवं विश्वास के बिना तो सिद्ध पुरुष भी अपने अन्तर के ईश्वर को भी नहीं देख सकते।

याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः
स्वान्त स्थमीश्वरम्
(बाल। २)

गोस्वामीजी के रामजी का अर्थ निश्चित रूप से सभी सम्प्रदायों या जैन अथवा बौद्ध राम कथाओं के राम से सर्वथा भिन्न है। जब उन्होंने 'राम सकल नामन्ह ते अधिका' कहा तो उनके मन में राम का वही अर्थ क्रीड़ा कर रहा था जो वे समझ रहे थे न कि इतिहास के पन्नों में वर्णित। इतिहास के राम अपनी जगह है और तुलसी के राम अपनी जगह है। वे नर होकर नारायण बन गये और नारायण होकर नर बन गये। मनुष्य हर स्थान पर राम के नाम को सहायक के रूप में पाता है। इसलिए 'राम सकल नामन्ह ते अधिका' तर्क संगत है और राम शब्द के दोनों अक्षरों में से एक '२' तो छत्र के समान (ॅ) रेफ बन कर और दूसरा मुकुट मणि के समान (ं) सभी अक्षरों पर प्रतिष्ठित है—

एक छत्र एक मुकुट मणि सब बरनन पर जोउ
तुलसी रघुवर नाम के बरन विराजत दोउ
(बाल। २०)

राम नाम की महत्ता बतलाते हुए गोस्वामीजी आगे कहते हैं कि राम का नाम और उनका स्वरूप दोनों एक हैं, पर नाम स्वामी है और नामी अर्थात् जिसका नाम है वह सेवक है, अनुगामी है। नाम और रूप ईश्वर की दो उपाधियाँ हैं। पर नाम आगे-आगे चलता है। नाम के ही अधीन रूप है। पहले हम किसी का नाम लेते हैं फिर उसके स्वरूप का चिन्तन करते हैं। नाम के स्मरण के विना स्वरूप की कल्पना तक नहीं आ सकती है।

देखि यहि रूप नाम आधीना रूप जान नहिं नाम बिहीना

हम किसी को बिना देखे ही उसके नाम का स्मरण कर सकते हैं। रामजी को कितनों ने देखा ? पर उसके नाम का स्मरण सभी करते हैं और फल भी प्राप्त करते हैं। धन्य हैं रामजी का नाम जिसका स्मरण कर योगी जन उस ब्रह्म सुख का अनुभव करते हैं, जिसका न कोई रूप है, न संज्ञा है और जो वर्णन से परे हैं। इस प्रकार उनका नाम निर्गुण ब्रह्म से भी बड़ा है।

निर्गुण ब्रह्म से भी अधिक राम नाम की महत्ता को प्रकट करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि निर्गुण स्वरूप तो उस छिपी हुई अग्नि के समान है जो काठ के भीतर रहती हुई भी दिखलाई नहीं पड़ती है और सगुण ब्रह्म प्रकट अग्नि के समान है पर रामजी का नाम जपने वालों के लिए सुगम है। निर्गुण ब्रह्म तो सबके हृदय में विद्यमान है और वह आनन्द राशि है, फिर भी लोग दुखी रहते हैं। यह बात समझ में नहीं आती अतः यह निर्भान्त सत्य है कि—

निरगुन तें एहि भाँति बड़ राम प्रभाउ अपार

अब रह गई सगुण ब्रह्म की बात। राम सगुण रूप धर कर अवतरित हुए पर उन्होंने केवल एक अहल्या का ही उद्धार किया। राम ने तो शिव का एक ही भवचाप तोड़ा, जबकि नाम भव भय भंजन है। नाम ने कितनों का उद्धार किया इसकी सूची बहुत ही लम्बी है—

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ
नाम उधारे अमित खल वेद बिदित गुन-गाथ

अब सेतु निर्माण की ही कथा ले लीजिए—सगुण राम ने असंख्य बानर—भालुओं के साथ मिलकर बड़े कठोर परिश्रम से सागर को बाँधकर पार किया था, लेकिन नाम का प्रभाव देखिये पहाड़ तथा पत्थरों पर राम के नाम लिखने पर वह मैं सागर में सेतु का काम किया नहीं तो केवल २ बानर नल-और नील के द्वारा सेतु का हो रहा था इतना अधिक समय न लग

कर कुछ ही समय में सारे बानर समुद्र के पार उतर गये। भगवान राम की महिमा का वर्णन करना बुद्धि के परे की बात है। जिसके लेने से अजामिल ऐसे पापी भी भवसागर पार कर लेते हैं।

नाम लेत भवसिन्धु सुखाही करहु विचार सुजन मन माही

अद्‌भुत है रामजी के नाम की महिमा नाम अगुण-सगुण एवं ब्रह्म राम तीनों से बड़ा है। फिर इस घोर कलिकाल में तो नाम का सर्वाधिक प्रभाव है। काल नेमि रूपी कलिकाल को पछाड़ने के लिए राम का नाम हनुमान है। यदि कलिकाल हिरण्यकश्यपु है तो राम का नाम नृसिंह भगवान है और जापक जन प्रह्लाद है। इस कलिकाल से योग यज्ञ और ज्ञान मुक्ति नहीं दिला सकते हैं, अगर कोई मुक्ति दिला सकता है तो वह है रामजी का नाम—

कलिजुग केवल हरि गुन गाहा गावत नर पावत भव ताहा

इसलिए राम के नाम का निरन्तर जप करना चाहिए। गोस्वामीजी कहते हैं कि अच्छे भाव से बुरे भाव से, चिढ़ कर, क्रोध से या आलस्य से जैसे भी हो राम का नाम जपने से जिधर जाइये मंगल ही मंगल है।

भायं कुभांथं अनख आलस्य हूँ नाम जपत मंगल दिसि दस हूँ

किसी भी स्थिति में किसी भी दिशा में और किसी भी लोक में नाम से अधिक कल्याण करने वाला और कोई नहीं है। नाम की महिमा इतनी अगाध है कि—

कहौ कहाँ लगि नाम बड़ाई रामु न सकै नाम गुन गाई

स्वयं रामजी भी नाम की महिमा का गुणगान नहीं कर सकते हैं। राम नाम का अमित प्रताप है। राम का नाम सम्पूर्ण कल्याणों का खजाना है, कलियुग के समस्त पापों का नाश करने वाला है, पवित्र करने वालों को भी पवित्र करने वाला है, परम पद मोक्ष का दाता है, श्रेष्ठ कवियों की वाणी को विश्राम देने वाला है, सत्पुरुषों का जीवन है, धर्म रूपी महावृक्ष का बीज है और आप सब का मंगल करने वाला है। रामचरित मानस के अंत में गोस्वामीजी ने लिखा है कि सबसे श्रेष्ठ कवि भगवान शंकर ने राम के चरण कमलों में नित्य निरन्तर भक्ति होती रहने के लिए जिस अलभ्य मानस (रामायण) की रचना की थी उस मानस में केवल राम का नाम ही नाम देख कर तुलसीदास ने अपने अन्तःकरण का अन्धकार मिटाकर शांति प्राप्त करने के लिए इस मानस को लोक भाषा में लिख डाला—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गम्
श्री मद्रामपदाब्ज भक्ति मनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्
मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरन्त स्वान्तस्तमः शान्तये
भाषा बद्ध मिदं चकार तुलसीदासतथा मानसम्

जिस रामजी के नाम की महिमा से प्रेरित होकर गोस्वामी जी ने राम चरित मानस रूपी अविनश्वर अमृत कलस भक्तजनों के हाथों में समर्पित किया है और जिसकी प्रत्येक चौपाई में 'र' या 'म' विद्यमान है उस परम पुण्य दायक मांगलिक राम नाम की महत्ता कौन कह सकता है। बस रामजी से यही प्रार्थना की जानी चाहिए—

कामिहिनारि पियारि जिमि, लोभी प्रिय जिमि दाम
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम

माता कौशल्या को राम के विराट-स्वरूप का दर्शन

राम चरित मानस में माता कौशल्या का चित्रण गोस्वामीजी ने परम भगवद् भक्ता महारानी के रूप में किया है। माता कौशल्या से बड़ा भाग्यशाली कौन है जिनके गर्भ से सकल जगत नियन्ता परात्पर ब्रह्म श्री राम ने पुत्र रूप में अवतार लिया है। ब्रह्म के जिस विराट स्वरूप को मात्र जानने के लिये बड़े-बड़े योगी सिद्ध एवं महान देवता निशि-दिन ध्याते हैं, फिर भी उसका भेद नहीं जान पाते हैं, उस ब्रह्मके विराट स्वरूप का दर्शन उन्हें प्रत्यक्ष हुआ। फिर दूसरी बात यह है कि परम सत्ता को धारण वही कर सकता है जो स्वयं अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न हो। अर्जुन ऐसे महारथी एवं भक्त ने भी जब जिस विराट स्वरूप को देख कर आँखें बन्द कर ली, तब उस शक्ति को नौ-नौ मास तक धारण करना अवश्य ही माता कौशल्या के परम भागवद-पद एवं उनकी शक्ति धारण क्षमता की ओर इंगित करता है। माता कौशल्या ने भगवान

के विराट स्वरूप के दर्शन एक बार नहीं दो-दो बार किये और उन्हें यह परम सौभाग्य मिला कि वह राम उनकी गोदी में खेला जो अपने एक इशारे से 'बिधि हरि शम्भु नचावन हारा' है। माता कौशल्या के इसी परम सौभाग्य का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद
सो आज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद

माता कौशल्या की भगवद् भक्ति का प्रभाव देखिये, जिस सर्व व्यापक परमेश्वर ब्रह्म को माया, गुण एवं विनोद छू नहीं सकते हैं, वही अजन्मा (पर ब्रह्म) अपने भक्त के प्रेम और वश में पड़ कर कौशल्याजी की गोद में आकर बालक बन खेले जा रहे हैं। भगवान को और चाहिए भी क्या ? उन्हें तो केवल अपने प्रिय भक्तों का प्रेम चाहिये। माता कौशल्या से बड़ा भक्त कौन है कि वे जगत नियन्ता को भी

मातु दुलारैं कहि प्रिय ललना

प्यारे लाल कह कर झुलाती एवं दुलार करती है। यह तो रहा माता कौशल्या की भक्ति का एक स्वर्ण प्रमाण। अब उनके सौभाग्य को भी देखिए। भगवान ने माता कौशल्या को पूर्व जन्म में वरदान दिया था कि मैं तुम्हारा पुत्र बन कर स्वयं आऊँगा और तुम्हारा ज्ञान कभी भी घटेगा नहीं।

मातु बिबेक अलौकिक तोरे कबहूं न मिटिहि अनुग्रह मोरे

हे माता ! मेरी कृपा से आपका ज्ञान कभी नष्ट न होगा।

माता कौशल्या एवं राजा दशरथ ही पूर्व जन्म के मनु एवं शत रूपा थे। गोस्वामीजी ने इन्हें पूर्व जन्म के कश्यप एवं अदिति भी माना है।

कस्यप अदिति महातप कीन्हा, तिन्ह कहुं मैं पूरब बर दीन्हा
ते दसरथ कौसल्या रूपा, कोसलपुरी प्रगट नर भूपा

भगवान कहते हैं—कश्यप एवं अदिति ने मुझे पुत्र रूप में प्राप्त करने के लिये बड़ी तपस्या की थी। उन्हें मैं बहुत पहले ही वर दे चुका हूं। वे ही इस जन्म में दशरथ एवं कौशल्या के रूप में कोशलपुरी (अयोध्या) के राजा हैं।

अपनी इस प्रतिज्ञा एवं माता कौशल्या की भक्ति वश जगत नियन्ता अवतार लेते हैं और कौशल्या जी के परम सौभाग्य का उदय होता है।

भये प्रकट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी
हरसित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रुप निहारी

लोचन अभिरामा तनु घन स्यामा, निज आयुध भुज चारी
भूषन बन माला नयन बिसाला सोभा सिन्धु खरारी

माता कौशल्या का हित करने वाले, मुनियों का मन हरने वाले कृपालु राम प्रकट हो गये। उस अद्‌भुत स्वरूप को देख कर माता जी मगन हो रही थी। सुन्दर रसीले नयनों वाले, मेघ के समान सांवले शरीर वाले, हाथ में गदा और पद्‌म, आभूषण और गले में वनमाला डाले, बड़े-बड़े नेत्रों वाले शोभा के सागर और खर राक्षस का नाश करने वाले भगवान राम सामने प्रकट हो गये। माता कौशल्या के प्रेम वश निर्गुण निराकार एवं अजन्मा (कभी जन्म न लेनेवाला) परात्पर ब्रह्म सगुण एवं साकार बन गया। यह अद्‌भुत स्वरूप लख कर माता कौशल्या स्तुति करने लगीं—

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौ अनन्ता
माया गुन ग्याना तीत अमाना बेद पुरान भनन्ता

हे अनन्त मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूं। वेद-पुराण कहते हैं कि माया गुण (सत्व, रज, तम) और ज्ञान आप तक पहुंच नहीं पाते हैं और आप मान रहित हो, ऐसे लक्षण वाले जिनको वेद एवं संतजन करुणा, सुख सब गुणों से भरा हुआ बतलाते हैं।

ऐसे भक्त वत्सल भगवान मेरे उदर से प्रकट हुए। यह सोच कर माता कौशल्या आत्म विभोर हो जाती हैं, पर जैसे ही उनके विराट स्वरूप का दर्शन करती हैं वे अवाक हो जाती हैं—

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम-रोम प्रति वेद कहै
मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिरन रहै

जिन विश्व रूप भगवान के विराट स्वरूप का वर्णन करते हुए वेद कहते हैं कि आपके रोम-रोम में माया ने अनेकों ब्रह्माण्डों को लाकर सजा दिया है, ऐसे विराट भगवान मेरे गर्भ में कैसे समा गये। इस अविश्वसनीय बात को सुन कर बड़े-बड़े धीर पुरुषों की बुद्धि भी चकरा जाती है।

माता कौशल्या को चकित देख कर भगवान हँस पड़े। उन्होंने माता को पूर्व जन्म में वरदान दिया था कि आपका अलौकिक ज्ञान मेरी कृपा से कभी भी घटेगा नहीं अपनी ही माया की प्रबलता देख कर मायापति को हंसी आ गई। बस फिर क्या था, माता का मोह भ्रम दूर हो गया।

उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै

उसी समय माता कौशल्या को ज्ञान उत्पन्न हो गया तब प्रभु मुसकरा दिये। वे तो अनेक प्रकार की लीलाएँ करने के लिये आए ही थे। इसलिए उन्होंने अनेक सुन्दर कथाएँ (अपने जन्म का रहस्य) कह-कह कर माता को समझाया जिससे उन्हें पुत्र का स्नेह मिलने लगे। यह सब सुनते ही माता की बुद्धि ही बदल गई। वे फिर बोली :—हे तात! अब अपना यह विराट रूप छोड़ कर मुझे बहुत प्रिय लगने वाली बाल लीला करने लगो। मुझे तो उसी से महान सुख मिलेगा। बस फिर क्या था, भक्त का आदेश पाते ही—

सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा
यह चरित जे गावहि हरिपद पावहि ते न परहिं भव कूपा

तब देवताओं के स्वामी सुजान राम माता की बात सुनते ही बालक बन कर रो उठे। गोस्वामीजी कहते हैं कि माता कौशल्या ने राम के जिस विराट स्वरूप का दर्शन किया और फिर वे बालक बने, इस हरिचरित्र को जो भी गाता है वह भव कूप में कभी पड़ता ही नहीं। धन्य है माता कौशल्या की अपार भगवत भक्ति जिन्होंने विधि हरि-हर के लिए भी दुर्लभ विराट स्वरूप के दर्शन किए।

माता कौशल्या को एक बार और भगवान के विराट स्वरूप के दर्शन पाने का सौभाग्य मिला। माता कौशल्या के आंगन में बालक रूप रामजी अनेक मनोहारी बाल क्रीडाएँ कर रहे थे। माताजी मगन थी—

प्रेम मगन कौशल्या निसि दिन जात न जान
सुत सनेह बस माता, बाल चरित कर गान

पुत्र के प्रेम में माता कौशल्या इतनी मगन हो गई कि उन्हें यह भी पता नहीं चल पाता था कि कब रात होती है और कब दिन। वे रात दिन पुत्र के स्नेह में पड़ी उनके बाल चरित्र का ही बखान किये जाती थी। रामजी ने सोचा कि एक बार तो माता को विराट रूप से बाल रूप दिखाया अब इस बाल रूप में उन्हें विराट रूप भी दिखा दूं। जिससे उनका मेरे प्रति बाल मोह दूर हो जाए। उन्होंने फिर लीला दिखा दी।

यह परम पवित्र तथा इस प्रकार है :—

एक दिन माताजी ने बालक राम को स्नान कराके उनका जीभर शृंगार किया और पालने में सुला दिया। फिर वे इष्टदेव की पूजा तैयारी करने लगी। उन्होंने फिर इष्ट देव को नैवेद्य चढ़ाया और सीधे रसोई घर में चली गई। पर वहाँ उन्होंने देखा कि बालक रामजी बैठे भोजन कर रहे हैं।

बहुंरि मातु तहंवा चलि आई भोजन करते देखि सुत जाई

वे तुरन्त पालने की ओर भागी, पर वहाँ भी वे सो रहे थे। फिर रसोई घर में आई और यहाँ भी लीलाधाम मोजूद। अद्भुत दशा उनकी हो गई वे सोचने लगी—

इहाँ उहाँ दुई बालक देखा मति भ्रम मोरकि आन विसेखा

मैं पालने भी उन्हें देख रही हूं और रसोई घर में भी, रहस्य क्या है ? यह मेरी बुद्धि का भ्रम है या कोई और विशेष बात है ? उधर माता को व्याकुल देख कर मायापति हंस पड़े। और तब—

दिखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड
रोम-रोम प्रति राजहि कोटि कोटि ब्रह्मण्ड

अपनी माता को अपना वह अखण्ड और विचित्र रूप खोल दिखलाया जिसके एक-एक रोम में करोंड़ करोड़ ब्रह्माण्ड लिपटे पड़े थे। माताजी ने देखा—

अगनित रबि ससि सिव चतुरानन बहु गिरि सरित सिन्धु महि कानन

X X X

देखी माया सब विधि गाढी अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी

माता ने असंख्य सूर्य, चन्द्रमा, शिव, ब्रह्मा, अनेक पर्वत, नदी, समुद्र, पृथ्वी एवं बन देखा। उन्होंने यह भी देखा कि सबको नचाने वाली परम शक्तिमयी माया प्रभु के सामने डरी हुई हाथ जोड़े खड़ी है। यह सब देख कर माताजी का शरीर रोमांचित हो उठा। माताजी ने माया के साथ उसके बंधन से जीव को छुड़ाने वाली भक्ति भी देखी। बस माताजी का चरित्र धन्य और अनन्य बन गया। माताजी को विस्मय में देख कर वे फिर बालक रूप बन गये। माताजी स्तुति करने लगीं पर भयवश उनके मुख से एक भी शब्द नहीं निकल रहा था। वे डर गई कि मैंने जगत पिता को सुत मान लिया। उन्होंने बिनती की—

बार-बार कौशल्या विनय करै कर जोरि अब जनि कबहुँ व्यापै प्रभु मोहि माया तोरी

हे प्रभो आज जो आपकी माया ने चक्कर में डाला सो डाला, आगे फिर यह मुझे अपने चक्कर में न डालने पाये।

कौशल्या मायातीत बन गई। और उनका चरित्र लोक के लिये आदर्श बन गया। भक्तों का सर्वस्व बन गया। धन्य है माता कौशल्या जिन्हें विधि हरि-हर दुर्लभ ज्ञान एवं भक्ति प्राप्त हुई और प्राप्त हुआ अखिल ब्रह्माण्ड नायक के विराट स्वरूप का भव्य दर्शन।

अहल्योद्धार

भक्तों के लिए अहिल्योद्धार का प्रसंग अतिशय रंजनकारी है। जिस समय युग-युग से पत्थर बनी हुई अहल्या आनन्दकंद मर्यादा पुरुषोत्तम के चरणों के स्पर्श मात्र से तप की मूर्ति बन कर खड़ी हो गई होगी, वह क्षण बड़े-बड़े ब्रह्म ज्ञानियों को भी अवाक कर देने वाला रहा होगा। सम्पूर्ण सृष्टि के इतिहास में यह घटना सर्वथा अलौकिक एवं अभूतपूर्व थी। लेकिन जो भक्ति के रहस्य को जानने वाले एवं भगवान के चरण अरविन्द के पराग का पान करने वाले प्रेमी मिलिन्द है उनके लिए तो यह उस महान करुणा वरुणालय आनन्द सिंधु एवं भक्त वत्सल कृपानिधान की राशि-राशि सीमाहीन करुणा की यह एक कृपा लहर ही थी। फिर भी अहल्योद्धार के दिव्य प्रसंग के स्मरणमात्र से आह्लादकारी रोमांच सा हो जाता है और कल्पना तथा वाणी अपनी सीमाएं जानकर थम सी जाती है। उस महानतम घटना दृश्य की अनुभूति केवल आँखें मूंदकर पवित्र हृदय में की जा सकती है। आँखें खोलने का काम ही क्या है ? सब कुछ तो दृश्य पटल पर अंकित हो जाता है और यदि आँखें खोल दी जाय तो उस पावन प्रसंग के स्मरण करते ही हृदय की समस्त निर्मल भावना आँसुओं के रूप में गल-गल कर बहने लगती है। आंसू भरे नेत्रों से देखा भी तो नहीं जा सकता है।

अहल्योद्धार की घटना कोई आकस्मिक नहीं थी। वह थी पूर्व नियोजित और नियोजित भी इसलिए की गई थी कि दुनिया वाले देख लें कि यदि किसी कारण वश कोई भूल भी किसी भक्त से हो जाती है तो अपार करुणा के सागर प्रायश्चित करने पर किस भाँति उस पर अपने करुणामृत की वर्षा करते हैं। रामजी तो ऐसे कृपालु हैं कि एक भूल क्या करोड़ों भूलें भी अपने भक्त की माफ कर देते हैं। उनके सामने जाते ही जन्म-जन्मान्तरों के जघन्य पाप भी नष्ट हो जाते हैं—

सनमुख होई जीव मोहिं जबहीं जनम कोटि अध नासहिं तबहीं

उनके सन्मुख जाने से या उनका साक्षात दर्शन होने से करोड़ों जन्मों के पातक तत्काल नष्ट हो जाते हैं। फिर अहल्या के अध तो जन्म-जन्मान्तरों के थे नहीं।

करुणा के सागर की करुणा की थाह न कोई पा सका है और न पायेगा। अतः अब हमें अपनी कल्पना उस क्षण की ओर ले जानी चाहिए

जिस क्षण में सृष्टि की वह घटना घटी जो न तो उसके पूर्व घटी थी और न भविष्य में ही घटेगी—'न भूतो न भविष्यति।' महाज्ञानी मुनि विश्वामित्र वन में अपना सुन्दर आश्रम बनाकर रहते थे। वे याजिक ऋपि थे, नियमित यज्ञ होम करते थे, पर राक्षस गण यज्ञ की सूचना पाते ही आ जाते थे और इतना उपद्रव मचाते थे कि वे यज्ञ नहीं कर पाते थे। उन्होंने विचार किया—

गाधि तनय मन चिन्ता ब्यापी हरि विनु मरिहि न निसिचर पापी

गाधि के पुत्र विश्वामित्र के मन में यही सबसे बड़ी उलझन बनी हुई थी कि जबतक रामजी नहीं आयेंगे, ये निचशार नष्ट नहीं होंगे। वे झट से अयोध्या आये और राम लक्ष्मण को लेकर आश्रम में आ गये। वहीं रामजी ने राक्षसों का वध किया और फिर विश्वामित्र के कहने पर मिथिला में धनुष यज्ञ देखने के लिए चल पड़े।

राम एवं लक्ष्मण मुनि विश्वामित्र के साथ चले जा रहे थे। मुनि विश्वामित्र उन्हें उस मार्ग से ले गये जिस पर गौतम ऋषि का आश्रम पड़ता था। वे मार्ग में चले ही जा रहे थे कि अचानक उन्हें एक ऐसा पवित्र आश्रम दिखाई पड़ा जहाँ कोई पशु था, न कोई पक्षी, न कोई जीव-जन्तु—

आश्रम एकु दीख मग माहीं खग मृग जीव जन्तु तहं नाहीं
पूछा मुनिहि सिला प्रमु देखी सकल कथा मुनि कही विसेखी

उसी आश्रम में पड़ी हुई एक पत्थर की शिला को देख कर रामने मुनि से पूछा कि यहाँ यह चट्टान कहाँ से आ पड़ी? तब मुनि ने उन्हें सारी कथा विस्तार से कह सुनाई—

गौतम नारी श्राप बस उपल देह धरि धीर
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुवी

यह तो गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या है जो उनके शाप के कारण युगों से पत्थर बनी हुई ऐसे ही पड़ी है। यह बहुत धैर्य पूर्वक आपकी ही प्रतीक्षा कर रही है आप इस पर कृपा करें, यह आपके चरण कमलों की धूलि चाहती है। इसका उद्धार करिये।

इस स्थल पर यह ध्यान देने योग्य है कि जीव जब तक ईश्वरीय कृपा से वंचित रहता है, वह जड़वत रहता है, लेकिन चेतन स्वरूप करुणा-पुंज नाथ जब कृपा करके उसे अपना लेते हैं तो उसकी जड़ता समाप्त हो जाती है और परम चेतन तत्व का स्पर्श पाते ही वह भी चेतन स्वरूप बन जाता है। राम ने अपने चरण कमल से उस जड़ शिला को छू दिया और उनके स्पर्श करते ही पाषाण शिला चेतन तत्व में बदल गया।

परसत पग पावन सोक सावन प्रगट भई तप पुंज सही
देखन रघुनायक जन सुख दायक सनमुख होई कर जोरि रही
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवै वचन सही.
अतिशय वड़भागी चरनन्हि लागी जुगुल नयन जल धार बही

कृपा निधान राम ने ज्योंही अपने शोक नसावन चरणों से स्पर्श किया वह सचमुच तप की मूर्ति अहल्या बनकर खड़ी हो गई। भक्तों को सुख देने वाले राम को साक्षात सामने देख कर वह हाथ जोड़े खड़ी की खड़ी रह गई। अहल्या की भक्ति की पराकाष्ठा देखिये, वह अत्यन्त प्रेम के कारण इतनी अधीर हो गई कि उसके शरीर का रोम-रोम पुलकित हो उठा और मुंह से एक भी शब्द नहीं निकल रहा था। फिर वह बड़ भागिनी अहल्या उनके चरणों से लिपट गई और अपने आंसुओं से पग पखारने लगी।

उसने फिर अपने को वहुत संभाला, अपने प्रभु को पहचान लिया और रघुपति राम की भक्ति तथा कृपा प्राप्त कर ली। जब प्रभु की भक्ति एवं कृपा मिल गई फिर तो अहल्या को और चाहिए क्या? वह महाभागा बन गई थी। उसने भाव विह्वल होकर रामजी की वन्दना की—हे ज्ञान से ही जाने जा सकने वाले राम! आपकी जय हो। कहां मैं इतनी अपवित्र नारी और कहाँ संसार को भी पवित्र करने वाले रावण के शत्रु एवं भक्तों को सूख देने वाले आप! हे कमल नयन! हे संसार का भय (जन्म-मरण का बंधन) मिटा देने वाले। मैं आपकी शरण में आई हूँ। मेरी रक्षा करिये।

भक्त जब पूर्ण आत्मसमर्पण करके प्रभु की शरण में आ जाता है और प्रभु उसे अपना लेते हैं तो फिर भक्त के सारे भय एवं पाप दूर हो जाते हैं। अहल्या बोलने लगी कि मेरे पतिदेव ने मुझे शाप देकर बहुत अच्छा किया था—

मुनि साप जो दीनहा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना
देखेउँ भरि लोचन हरि भव मोचन इहइ लाभ संकट जाना
विनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न माँगा वर आना
पद कमल पराग रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना

मैं अपने पति की बड़ी कृपा मानती हूं क्योंकि उनकी कृपा से ही तो आज मैं संसार के भय से मुक्त करने वाले भगवान को भर आँखों देख पाई हूं। शंकर भी इस लाभ को बहुत बड़ा मानते हैं। हे प्रभो! मैं तो बुद्धि की बड़ी भोली हूं। नाथ! मेरी एक यही विनती है, मैं दूसरा और कोई वरदान आपसे नहीं चाहती, केवल इतना ही चाहती हूं कि मेरे मन का

भौरा आ के चरण कमलों की धूल से प्रेम करके निरन्तर आनन्द रस का पान करता रहे।

भक्त को और चाहिए क्या, अहल्या ने तो सब कुछ मांग लिया। जिन पावन चरणों से परम पुनीत गंगाजी प्रवाहित हुई और उन गंगाजी को शंकर ने अपने शीश पर सादर धारण किया उन्हीं चरणों का स्पर्श लाभ अहल्या को मिल गया।

सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी

अहल्या को मन चाहा वरदान मिल गया और वह महाभागा आनन्द पूर्वक पति लोक को चली गई।

यह है अहल्योद्धार की परम पावन कथा। भगवान रामअपार करुणा करुणालय हैं। वे भक्तों की भूल को भुला कर उन्हें अपनाते हैं और ऐसा अपनाते हैं कि फिर भक्तों को कोई भय नहीं रह जाता उनकी सारी जड़ता समाप्त हो जाती है और वे अहल्या की भाँति परम पावन वन जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं—

अस प्रभु दीन-बन्धु हरि कारण रहित कृपाल
तुलसिदास सठ तेहि भजु छौडि कपट जंजाल

अरे दुष्ट मन ! विना कारण दीनों पर कृपा करने वाले ऐसे दीन-बन्धु हरि को तू सारा कपट जंजाल त्याग कर अबसे भी भजने लग।

राम परशुराम संवाद
जीव को ब्रह्म की पहचान

राम चरित मानस में राम-परसुराम संवाद भक्ति के अत्यन्त गूढ़ रहस्यों से भरा हुआ प्रसंग है। राम भी विष्णु के अवतार हैं और परसुराम भी वही हैं जो राम हैं। दोनों अवतारों का हेतु भूतल को पापियों से मुक्त करना था। परसुराम का अवतरण इस लोक में राम से पहले हुआ था। उन्होंने दुष्ट अधर्मी राजाओं का आमूल विनाश कर लोक का अमित कल्याण किया था। रामने भी यही किया, पर राम जन-जन के आत्माराम बन गये। इसका कारण था राम का अपार शील। परसुराम में शील का अभाव था, कारण कि जिस युग में उनका अवतरण हुआ था वह इस गुण के योग्य नहीं था। स्वेच्छाचारी उदण्ड राजाओं की दृष्टि में शील का कोई महत्व ही नहीं था। झाड़ी-झंखाड़ रूपी राजाओं को काटने के लिए यदि परसुराम शील का परिचय देने लगते तो उनके अवतार का उद्देश्य ही विफल हो जाता और राम को भी लोक मंगल की साधना के लिये तैयार आदर्श भाव भूमि न मिलती। परसुराम ने यही भूमिका 'धनुष भंग' के अवसर पर भी अदा की। राम ने धनुष तोड़ दिया तो खीझ कर उपस्थित राजागण विद्रोह पर उतर आये—

उठि उठि पहिरि सनाह अभागे जहं जहं गाल बजावन लागे
लेहुं छड़ाई सीय कह कोऊ धरि बाँधहुं नृप बालक दोऊ

सभी राजा अपने-अपने आसन छोड़कर खड़े हो गये। कोई कहता था कि सीता को बल से छीन लो तो कोई कहता था कि दोनों राजकुमारों को बन्दी बना लो।

स्थिति विषम थी। ऐसे अवसरों पर इक्कीस बार राजाओं का मान मर्दन करने वाले परसुराम का आगमन अनिवार्य था। कारण कि राजाओं को सही मार्ग पर लाने का कार्य राम का नहीं परसुराम का था। वे आ गये और ऐसे आये मानों मुनि का रूप धारण कर स्वयं वीर रस ही आ गया और उनका कराल रूप देखते ही उदण्ड राजागण ऐसे श्रीहीन हो गये जैसे बाज को देखकर बटेर छिप जाती है। और—

पितु समेत कहि कहि निज नामा लगे करन सब दण्ड प्रनामा

जब राजागण अपने अपने पिता का नाम लेकर उन्हें दण्ड प्रणाम कर चुके तो परसुराम ने जानकर भी अन्जान बनते हुए परसुराम से पूछा कि जनक यह भीड़ किस लिए है ? जनक ने जब सारा समाचार कहा तो वे क्रोध लाल हो गये। सब कुछ जानते हुए भी उन्होंने केवल वाह्य अभिनय करते हुए कहा कि जिसने धनुष तोड़ा है वह कहाँ है ?

वेगि देखाउ मूढ़ नत आजू उलटउं महि जहं लखि तव राजू

ऐ मूढ़ ! उसे फौरन दिखाओ नहीं तो मैं आज ही जहाँ तक तेरा राज्य है वहां तक की जमीन उलट दूंगा।

एक और विरोधाभास देखने योग्य है। परसुराम तो स्वयं वही थे सब कुछ जानते थे, पर किसी को अपना भेद भी नहीं देना चाहते थे और राम के ब्रह्मत्व.की भी पूर्ण परीक्षा कर लेना चाहते थे। इसका कारण स्पष्ट है। वे अब आगे का दुष्ट दलन कार्य राम को सौंप देना चाहते थे। अब राम अत्यन्त शील एवं विनय की मूर्ति बनकर बोले—

नाम सम्भु धनु भंजनि हारा
होइहि केउ एक दास तुम्हारा
आयसु काह कहिअ किन मोही

हे नाथ ! शंकर का धनुष तोड़ने वाला आपका ही कोई दास होगा। बोलिये अब मुझे क्या आज्ञा है ?

रामने कितनी गूढ़ बात कह दी। उन्होंने अपने को परसुराम का दास कहा। दास स्वामी का अनुगमन करता है अर्थात् पीछे-पीछे चलता है। राम भी परसुराम के पीछे ही इस लोक में आये थे।

यह तो रहा राम-परसुराम संवाद का एक पक्ष। अब दूसरा एवं अत्यन्त गूढ़ रहस्य भी देखना चाहिये। यह प्रसंग भक्ति की दृष्टि से सर्वथा अनुपम है। जीव ब्रह्म की ही माया वश निरन्तर भ्रमित रहता है। जव तक उसके ऊपर सांसारिक विकारों का आवरण पड़ा रहता है, वह सामने प्रत्यक्ष रूप से आये ब्रह्म को भी नहीं पहचानता। जब तक हृदय के नेत्र नहीं खुलते हैं वह अशक्ति को नहीं जान सकता है। गोस्वामी तुलमी दास के जीवन में भी ऐसी ही घटना घटित हुई थी। चित्रकूट के घाट पर वे चन्दन घिस रहे थे और उनके अराध्यदेव बालक बनकर उनसे वार-वार चन्दन मांग रहे थे। गोस्वामीजी उन्हें पहचान नहीं रहे थे तव हनुमान जी ने तोता का रूप धारण कर यह दोहा कहा :—

चित्रकूट के घाट पै भइ सन्तन की भीर
तुलसिदास चंदन घिसै तिलक देय रघुवीर

गोस्वामीजी उन्हें पहचान गये। इसी भांति किष्किन्धाकाण्ड में स्वयं हनुमानजी का एक प्रसंग है। राम और लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत की ओर जा रहे थे। सुग्रीव ने उन्हें देखकर हनुमान से कहा कि उन दोनों का भेद प्राप्त करो। हनुमानजी आये। पहले तो वे पहचान नहीं पाये और जब राम कृपा से पहचान गये तो—

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना सो सुख उमा जाइ नहि बरना

सीधे चरणों में गिर गये। शंकरजी कहते हैं कि हनुमानजी को जो सुख प्राप्त हुआ वह वर्णनातीत है।

परसुराम भी अपने चारु चरित्र द्वारा यही प्रदर्शित करते हैं कि जब तक आत्मा क्रोध मोहादि विकारों से मुक्त नहीं होती सामने प्रत्यक्ष हुए ईश्वर को भी पहचान नहीं सकता। और ऐसे अज्ञानी की जो प्रत्यक्ष ब्रह्म को नहीं जान पाता, दुनिया उसकी हँसी उड़ाती है। लक्ष्मण के कथन ऐसे ही दुनियावालों के प्रतीक है। पूरा नाटक पूर्व नियोजित है, सब एक दूसरे को जानते हैं, पर जगत कल्याण के लिए अपना-अपना अभिनय कर रहे हैं। गोस्वामीजी ने बालकाण्ड के प्रारम्भ इस ओर संकेत भी कर दिया है —

घोर धार भृगुनाथ रिसानी घाट सुबद्ध राम बर बानी

राम चरित मानस से भक्ति की जो सुरसरिता प्रवाहित हुई उसमें भृगुनाथ परसुराम का क्रोध उसकी घोर धारा है और राम की शील विनय युक्त वाणी ही अच्छी तरह बाँधा हुआ घाट है।

परसुराम का क्रोध अपार है पर वे स्वयं कहते हैं—

बहइ न हाथु दहइ रिस छाती भा कुठार कुंठित नृप घाती
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ मोरे हृदय कृपा कसि काऊ

मेरी छाती तो प्रतिपल क्रोध से चल रही है। और आश्चर्य है कि राजाओं का संहार करने वाला कुठार आज कुण्ठित हो गया है, मेरा हाथ बध के लिए क्यों रुका है। क्या आज विधाता ही वाम हो गया है कि मैं अपनी प्रकृति ही भूल गया। मेरे हृदय में दया के ये भाव क्यों कर आ रहे हैं ?

अद्भुत स्थिति है परसुराम की। जब यह नाटक अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुंच गया तो राम ने अत्यन्त विनम्रता से उत्तर दिया कि हे मुनिनाथ !

आपका क्रोध जिससे दूर हो वही करो, मैं तो आपका अनुगामी हूँ।

जेहि रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी मोहि जानिअ आपन अनुगामी

राम ने आगे कहा कि मेरी आपकी किस प्रकार समता हो सकती है ?

राम मात्र लघु नाम हमारा परसु सहित बड़ नाम तोहारा
देव एकु गुनु धनुष हमारे नव गुन परम पुनीत तुम्हारे

मेरा तो केवल छोटा सा नाम राम है और आपके नाम में राम के भी आगे परसु लगा हुआ है। मेरे पास तो केवल धनुष का ही एक गुन है, जबकि आपके यज्ञोपवीत में नौ गुन हैं।

इसके बाद राम ने अन्त में एक अत्यन्त गूढ़ बात कह दी—

विप्र बंस कै असि प्रभुताई अभय होइ जो तुम्हहि डेराई

ब्राह्मण वंश की महिमा तो देखिये ! मैं अभय हूं कारण कि आपसे डर गया था अर्थात मेरी छाती पर आपके ही वंशज भृगु मुनि ने चरण प्रहार किया था। बस फिर क्या था, परसुराम ने राम के वक्ष स्थल पर भृगु मुनि का चरण चिन्ह देख लिया। वे तुरन्त समझ गये कि ये तो वही हैं जो मैं हूँ—

सुनि मृदु गूढ़ वचन रघुपति के उघरे पटल परसुधर मति के

राम के गूढ़ वचन सुनते ही उनके ज्ञान पटल खुल गये। जीव को ब्रह्म का भान हो गया। उन्होंने राम से विष्णु का धनुष चढ़ाने को कहा, पर वह तो अपने स्वामी के पास स्वतः चला गया और परसुराम चकित हो गये—

देत चापु आपहिं चलि गयऊ परसुराम मन बिसमय भयऊ

बस फिर क्या था वे लगे अपने ही तत्व की स्तुति करने—

जय रघुवंश बनज वन भानू गहन दनुज कुल दहन कृसानू
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी जय मद मोह कोह भ्रम हारी
विनय सील करुना गुन सागर जयति बचन रचना अति नागर
सेवक सुखद सुभग सब अंगा जय सरीर छबि कोटि अनंगा
करौ काह मुख एक प्रसंसा जय महेस मन मानस हंसा

हे रघुवंश रूपी कमल वन के सूर्य ! हे दनुज कुल रूपी वन को जला डालने वाले अग्निरूप ! हे विप्र, सुर एवं गोवंश का हित करने वाले ! हे मद मोह क्रोधादि भ्रम दूर करने वाले तुम्हारी जय हो। आप विनयशील, गुणके सागर एवं सुन्दर शील युक्त वचन बोलने वाले हैं। सेवकों का सदा सुख देने वाले राम ! आपके सभी अंग सुन्दर अनुपात युक्त हैं और शरीर का

सौन्दर्य करोड़ों कामदेवों के समान हैं। मैं एक मुख से आपकी प्रशंसा कैसे कर सकता हूँ। आप तो शंकर के मा रूपी मान सरोवर में बसने वाले हंस हैं।

परसुरामकी यह विनय एक उत्कृष्ट एवं कपटहीन भक्त के हृदयोद्गार है। यह सम्वाद भक्ति के गूढ़ रहस्यों से भरा हुआ है। इस प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि क्रोध मोहादि विकार दूर होने पर ही जीवात्मा ब्रह्म का साक्षात्कार कर पाती है और जब उसका दर्शन हो जाता है तो भक्त निर्मल मन वाला बनकर जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तपस्या करने हेतु चला जाता है।

कहि जय - जय जय रघुकुल केतू भृगुपति गये बन हि तप हेतु

राम निषाद राज सम्वाद

केवटों का सरदार निषाद राज रामजी का अनुपम भक्त था। वनवासी होते हुए भी वह रामजी के स्वभाव से पूर्ण परिचित था। रामजी जो अपने भक्तों से कहना चाहते हैं, निषाद राज वह सब पहले ही कह कर रामजी को मौन कर देता है। रामजी जब सीताजी एवं लक्ष्मण जी सहित शृंगवेरपुर पहुंचे तो सामने लहराती हुई परम पुण्यतोया भागीरथी को देख कर उन्होंने सब के साथ उन्हें प्रणाम किया। निषाद राज ने जब यह समाचार सुना कि रामजी आये हैं तो उसे इतना उल्लास हुआ कि उसने अपने सब बन्धु बान्धवों को बुला लिया। वह प्रसन्नता से फूला नहीं समा रहा था। दोकरों और बहंगियों में कन्द-मूल-फल भर-भर कर रामजी के पास मिलने के लिये चले और अपनी सब भेंट उनके आगे रख कर बड़े प्रेम से टकटकी बांध कर उन्हें देखने लगा।

करि दण्डवत भेंट धरि आगे, प्रभुहिं विलोकत अति अनुरागे

रामजी तो अन्तर्यामी हैं। उन्होंने अपने स्वाभाविक स्नेह से निषाद

को अपने समीप बैठा लिया और उससे कुशल क्षेम पूछने लगे। निषाद को अवश्य ही संकोच हुआ होगा कि कहाँ शुद्ध सच्चिदानन्द अवध नरेश राम और कहाँ वह छोटी जाति का वनवासी केवट पर रामजी की तो बात ही निराली है। रामजी द्वारा कुशल क्षेम पूछने पर निषाद ने बड़ी ही विनम्रता से उत्तर दिया :—

नाथ कुसल पद पंकज देखे भयउं भाग भाजन जन लेखे
देव धरनि धन धाम तुम्हारा मैं जन नीच सहित परिवारा
कृपा करिय पुर धारिय पांऊँ थापिय जन सब लोग सिहाऊँ

हे नाथ। आपके चरण कमलों के दर्शन हो गये तो सब कुशल है। आज से लोगों की दृष्टि में मेरी भी गिनती भाग्यवान पुरुषों में होने लगी। देव! यह सब जो कुछ जमीन दान और घर आप देख रहे हैं सब आपका ही है। मैं नीच भी परिवार सहित आपका ही तुच्छ सेवक हूं। अब आप कृपा करके नगर (श्रृंगवेर पुर) में पधारिये और इस दास का गौरव बढ़ा दीजिये जिससे सब लोग मेरे जैसा भाग्य पाने के लिये तरस उठें।

कितना चालाक भक्त है निषाद। उसने अपना सब कुछ रामजी के चरणों में अर्पित कर दिया। रामजी का स्वभाव भी ऐसा है। उन्होंने यह रहस्य भक्त विभीषण से भी प्रकट किया।

जननी जनक बंधु सुत दारा तन धन भवन सुहृद परिवारा
सब कै ममता ताग बटोरी मम पद मनहिं बांध बटि डोरी

वे कहते हैं कि मेरा यह स्वभाव है कि जो पुरुष अपने माता पिता, बन्धु, पुत्र, स्त्री, धन, भवन और प्रिय परिवार की ममता के डोरे समेट कर और उन सब की डोरी बंट कर उस डोरी से अपना मन लपेट कर उसे मेरे चरणों में ला बांधता है वह मेरा असली भक्त है और ऐसे भक्त मेरे हृदय में उसी प्रकार बसते हैं जिस प्रकार लोभी मनुष्य हृदय में सदा धन बसा रहता है—

अस सज्जन मम उर बसे कैसे लोभी हृदय बसै धन जैसे

निषादराज रामजी के बिना कहे ही अपना सब कुछ उनके चरणों में अर्पित कर देता है और उनके हृदय में अपना स्थान बना लेता है। रामजी भी मुस्करा कर उसकी बात का अनुमोदन कर देते हैं—

कहेउ सत्य सब सखा सुजाना मोहिं दीन्ह पितु आयसु आना

देखो भले और चतुर मित्र! तुमने जो कुछ कहा है वह अक्षरसः

सत्य है पर पिता ने तो मुझे दूसरी ही आज्ञा दी है। मैं चौदह वर्ष तक वन में ही रहूंगा। तब निषादराज ने निश्चित किया कि रामजी के लिये शीशम के वृक्ष के नीचे ही ठहरने की व्यवस्था कर देना ठीक होगा। उसने रामजी को वह स्थान भी दिखा दिया। रामजी को वह स्थान बड़ा जंचा। जब रामजी गंगाजी के तीर पर संध्या वंदन करने चले गये तो निषाद ने अपने हाथों से कोमल पतों की गुदगुदी सुहावनी साथरी (गद्दी) बिछा दी, अच्छे और ताजे मीठे स्वादिष्ट फल-मूल और दोना में शीतल जल लाकर रख दिया।

कितना भाग्यशाली है निषाद राज जिसे रामजी की सेवा करने का प्रत्यक्ष सुयोग मिला। रामजी जब कन्दमूल खा कर सो गये तो निषादराज को बड़ा दुःख हुआ। उसका शरीर रोमांचित हो गया और उसकी आँखों से श्रद्धा के आँसू बहने लगे। वह अपने विश्वासी केवटों के साथ स्वयं रामजी की पहरेदारी करने लगा।

इसे भक्त की सरलता ही कहा जायेगा। रामजी तो सारे लोगों के रक्षक हैं और सेवक का भोलापन देखिये वह उन्हीं की ही रक्षा करने लगा। धन्य है निषादराज जिसकी सरल भक्ति पर रामजी मोहित हो गये और उसे अपने प्रधान भक्तों में स्थान दे दिया। निषाद राज भी रामजीसे कुछ न चाहता था वह तो बस उनकी अविरल भक्ति का अभिलाषी था। तभी तो उसने कहा कि आप मेरे यहाँ पधारे जिससे कि दुनिया वाले मेरा सौभग्य देख कर सिहर उठे। धन्य है निषाद और धन्य है उसकी रामजी के चरणों के प्रति छलहीन भक्ति।

राम केवट सम्वाद : भगवद् भक्ति का मर्म

श्री रामचरित मानस के अयोध्या काण्ड में वर्णित 'राम-केवट संवाद' भगवद् भक्ति के गूढ़ रहस्यों एवं आनन्द माधुरी से लबालब भरा हुआ प्रसंग है। गूढ़ता ऐसी कि जो रामजी 'विधि हरि सम्भुनचावन हारा' है, बड़े-बड़े योगी साधक भी रात दिन उनका ध्यान करके भी रंच मात्र मर्म नहीं जान पाते, उन्हीं रामजी के मर्म को जानने का अधिकार पूर्ण दावा केवट कर रहा है—

कहइ तुम्हार मरम मैं जाना

जब रामजी ने केवट से नाव माँगी तो वह कहता है कि मैं आपका सारा भेद जानता हूँ। यह मत समझिये कि मैं नौका ही चलाता हूं। रामजी मुस्करा उठते हैं कि कहीं यह भोला भाला भक्त मेरा भेद न खोल दे। वे केवट की शर्त मान लेते हैं। आखिर भेद खुल जाने के भय से सभी घबड़ाते हैं। केवट द्वारा उनका भेद जानना स्वयं में अतिगूढ़ रहस्य है। प्रश्न उठता है कि यह केवट है कौन ? क्या है इसकी ज्ञान सीमा जो रामजी से अपनी शर्त मनवा लेता है ? इस विषय पर जितना सोचते जाइये उतना ही यह रहस्य और गहरा हो जाता है।

पर रामजी तो सदा अपने भोले भाले भक्तों के वश में रहने वाले हैं। ऐसे भक्तों पर उनकी करुणा उसी प्रकार बरसा करती है जिस प्रकार माता की अपने नन्हें पुत्र पर—

जिमि बालक राखहि महतारी

बालक भी माता से हठ करता है और यदि माता उसकी बात को नहीं मानती है तो वह धमकी देता है और धमकी भी कैसी इसका उदाहरण भी देखिए। माता का पुत्र पर अपार वात्सल्य रहता है। वह कभी कभी पुत्र को छिपा कर भी खिलाती है बस माता की इस कमजोरी को पुत्र ताड़े रहता है और जब माता उसकी बात नहीं मानती है तो बस वह ब्रह्मास्त्र के प्रयोग करने की धमकी देता है कि यदि तूने मेरी जिद न पूरी की तो मैं सब भेद जानता हूं खोल दूंगा अभी सारा रहस्य।

माता पुत्र के इस भोलेपन पर बलिहार हो जाती है उसे गोदी में उठा लेती है और प्यार के चुम्बनों की वर्षा उसके मुखरविन्द पर कर देती है।

रामजी भी केवट की इसी सरलता पर मुग्ध हो गये। कहां इतनी आनन्द माधुरी जितनी केवट के सम्वाद में है।

रामजी, सीताजी एवं लक्ष्मण जी को गंगा के समीप छोड़ कर सुमंत्र चलने लगे, ज्योंही सुमंत्र ने रथ हांकना चाहा कि रथ के घोड़े राम की ओर देख कर हिनहिना उठे। निषाद ने यह देख कर सिर पीट लिया कि जिनके वियोग में पशु तक इस प्रकार व्याकुल हुए जा रहे हैं उनके वियोग में उनकी प्रजा, माता और पिता कैसे जीते रह सकेंगे ? सुमंत्र को लौटा कर राम वहां से गंगा के तट पर आए और जब उन्होंने एक केवट से नाव लाने को कहा तो नाव लाने के बदले वह उलटे कहता क्या है ?—

मांगी नाव न केवट आना कहइ तुम्हार मरम मैं जाना
चरन कमल रज कहं सब कहइ मानुप करनि मूरि कछु अहइ
छुवत सिला भइ नारि सुहाई पाहन ते न काठ कठिनाई

रामजी ने जब नाव मांगी तो वह लाया और कहने लगा कि यह न समझिए कि मैं कुछ नहीं जानता हूं। मैं आपका सारा भेद भलीभांति जानता हूं कि आप साक्षात ब्रह्म हैं, पर सीता और लक्ष्मण समझते थे कि रामजी के चरणों की धूल छु जाने से पत्थर की शिला किस भांति अहल्या बन गई थी, यही बात जानता होगा। केवट ने प्रमाण भी पेश कर दिया कि मैं नहीं जिससे पूछो वही यह कहता है कि आपके चरण-कमल में लगी धूल में कुछ ऐसी जड़ी है कि वह जिसे भी छू जाए (जो आपकी शरण में चला जाए) उसे सच्चा मनुष्य बना डालती है। (भला भगवान की चरण कृपा से कोई जड़ बना रह सकता है) आपके चरणों की धूल का स्पर्श पाते ही पाषाणशिला सुन्दर (पवित्र) नारी बन गई (इसलिये मेरी इस काठ की नाव को या मेरी इस काठी या देह को पवित्र बनाते आपको देर क्या लगेगी ?) क्योंकि काठ तो पत्थर से कड़ा नहीं होता।

केवट सरल चित्तवाला भक्त है। रामजी इसे जानते हैं। वह नाव से उन्हें पार कराने के पूर्व अपने को भवसागर के पार कराना चाहता है। रामजी को ऐसे सरल चित्तवाले भक्त के सामने झुकना पड़ता है। केवट उसी सरलता से आगे कहता है—

तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई बाट परइ मोरि नाव उड़ाई
एहिं प्रतिपालउं सब परिवारू नहिं जानउं कछ अउर कबारू

कहीं मेरी यह नाव ही मुनि की पत्नी बन कर उड़ गई तो मेरा सारा धंधा ही चौपट हो जायगा। (मेरी यह भवसागर में पड़ी नाव रूपी देह

भले ही मुनि की पत्नी बन-कर उड़ जाय और सारा धंधा ही क्यों न चौपट हो जाय पर मेरे पाप तो कट जायेंगे) क्योंकि मैं इसी के सहारे अपने घरवालों का पेट पाले जा रहा हूं अर्थात् आज तक मैं इसी विश्वास से अपने सारे परिवार के साथ जीवित हूं कि एक दिन आप अवश्य आयेंगे और आप के चरणों की धुल मूझे प्राप्त होगी। मैंने इसके अलावा कोई दूसरा धंधा सीखा ही नहीं।

केवट रामजी के सामने अपनी शर्त भी रख देता है कि अगर आपको गंगा के पार जाना है तो मुझे अपने चरण कमल पखारने के लिये कहिए। जब तक मैं अपाके चरणों को पखार नहीं लूंगा आपको गंगा के पार नहीं करूंगा। (जब तक आप मुझे इस संसार से नहीं तारेंगे मैं आपको गंगा के पार नहीं उतारूंगा।)

जो प्रभु पार अवसि गा चहहु मोहि पद पदुम पखारन कहहु

केवट बहुत चालाक भक्त है। वह सोचता है कि कहीं उसके रामजी उसे उतराई न देने लगें, इसलिये वह पहले ही स्पष्टीकरण कर देता है।

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराइ चहौं
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं
बरु तीर मारहुं लखनु पै जब लगि न पाय पखारि हौं
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारि हौं

देखिए स्वामी, आपके कमल जैसे चरण धोकर मैं कोई उतराई नहीं लेना चाहता हूं। मैं जो कुछ कह रहा हूं उसे आप पत्थर की लकीर समझिए। आपकी मर्यादा समझ कर और महाराज दशरथ की सौगंध खाकर मैं सत्य कहे दे रहा हूं कि लक्ष्मण भले ही अपना वाण मार कर मुझे यहीं ढेर कर दें पर जब तक मैं आपके चरण नहीं धो लेता तब तक हे तुलसीदास के कृपाल ! मैं आपको पार नहीं उतारूंगा।

भक्त और भगवान का यह अद्भुत झगड़ा है। भक्त हठी है अपने इष्टदेव को पहचान गया है और रामजी संकट में पड़ गए हैं कि कहीं मेरा भेद न खोल दे। अन्त में सबके मन के जानन हार रामजी भक्त के हठ के सामने अपनी हार मान लेते हैं। वे तो सदा ऐसे भक्तों से हारते ही आये हैं। केवट की यह अटपटी वाणी सबकी समझ में आने वाली नहीं है, इसलिए रामजी सीताजी और लक्ष्मणजी की ओर देख कर मुस्करा उठते हैं।
सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे विहसे करुना ऐन चितइ जानकी लखन तन

फिर वे अपने अद्भुत भक्त केवट की ओर देख कर मुस्कराते हैं और कहते हैं—

कृपासिंधु बोले मुसकाई सोइ करु जेहि तव नाव न जाई

केवट ! तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाय अर्थात तू भवसागर में फिर चक्कर न खा सके। पर अपना भेद प्रगट हो जाने के भय से वे कहते हैं—

वेगि आनु जल पाय पखारू होत विलम्बु उतारहि पारू

केवट तू जल्दी से जल लाकर मेरे पैर धो ले और मुझे पार उतार दे क्योंकि बहुत देर हो रही है।

रामजी की लीला भी अद्भुत है। जिनका नाम लेकर पापीजन भी भवसागर के पार हो जाते हैं वही केवट से गंगापार जाने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। रामजी की आज्ञा पाते ही—

केवट राम रजायसु पावा पानि कठवता भरि लेइ आवा

केवट एक बहुत बड़े कठौते में जल भर कर ले आया और अत्यन्त आनन्द तथा प्रेम की उमंग में रामजी के चरण पखारने लगा। सभी देवता-गण फूलों की वर्षा कर रहे थे तथा मन में तरस रहे थे कि केवट के समान इस संसार में कोई दूसरा पुण्यात्मा बड़ भागी नहीं है—हमलोगों को ऐसा सौभाग्य क्यों नहीं मिला।

बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं एहि सम पुन्यपुंज करेउ नाहीं
पद पखारि जलु पाव करि आपु सहित परिवार
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार

पैर धोकर उसने स्वयं चरणोदक का पनन किया, परिवार भर को आचमन कराया और इस प्रकार पहले अपने पितरों को पार करके वह रामजी को पार ले गया।

असली बड़भागी वही है जो अपने को तो पार करा लेता है लेकिन साथ-साथ पूरे परिवार को भी पार करा देता है।

आपु तरै औरों को तारै तारै कुल परिवारा

रामजी, सीताजी, लक्ष्मण जी एवं निषादराज गुह के साथ नाव से उतर कर गंगा के उस पार रेती पर जा खड़े हुए। वे गंगा पार तो हो गए पर पुन: धर्म संकट में पड़ गए—

केवट उतारि दंडवत कीन्हा प्रभुहि सकुच एहि नहि कछु दीन्हा

केवट ने नौका से उतर कर रामजी को दण्ड प्रणाम किया, रामजी ने समझा कि शायद इनाम पाने की लालसा से केवट ने प्रणाम किया है। उन्हें बड़ा संकोच हुआ कि मैंने तो इसे कुछ भी नहीं दिया। उनके पास पुरस्कार देने के लिए कुछ था ही नहीं। सीताजी ने रामजी की द्विविधा ताड़ ली—

पिय हिय की सिय जाननि हारो मनि मुन्दरी मन मूदित उतारी

सीताजी अपने पति रामजी के हृदय की प्रत्येक बात जान लेती हैं, उन्होंने तत्काल अपनी मणि जड़ित मुद्रिका उतार दी।

रामजी ने केवट को यह मुद्रिका देते हुए कहा कि हे केवट! यह अपनी मजदूरी ले लो। इतना सुनते ही केवट ने रामजी के चरण कमल व्याकुल होकर पकड़ लिए और कहने लगा—

नाथ आजु मैं काह न पावा मिटे दोष दूख दारिद दावा
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरि
फिरती बार मोहि जो देवा सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा

नाथ! आपके चरणों की सेवा करके तथा उनका चरणामृत पीकर और आपको गंगा पार करा करके मैंने क्या नहीं पा लिया? मेरे सारे दोष, दुख एवं दरिद्रता की ज्वाला शान्त हो गई। जहां तक मजूरी की बात है वह मैं करता तो बहुत दिनों से आ रहा हूं पड़ विधाता ने आज ही भरपूर और भली भांति मजूरी दिलवाई है। अब तो नाथ आप की कृपा से मुझे कुछ पाना बाकी नहीं रहा है। हाँ लौटती बार आप जो भी मुझे देंगे मैं उसे प्रसन्नता पूर्वक आपका प्रसाद मान कर सिर पर चढ़ा लूंगा।

बहुत चालाक है केवट, यह रामजी भी समझ गये, इस बार तो उसे परम सौभाग्य प्राप्त ही हुआ दुबारा लौटती बार के लिए भी वह एंडवांस बुकिंग करा लेता है। वह रामजी को बाध्य कर देता है कि लौटती बार भी उसे ऐसा परम सौभाग्य प्रदान करें। रामजी, लक्ष्मण जी एवं सीताजी के बार-बार आग्रह करने पर भी वह इस बार कुछ नहीं ले रहा है।

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय नहिं कुछ केवट लेइ
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति विमल वर देइ

सब के कहने से भी जब केवट ने कुछ नहीं लिया तो रामजी समझ गये कि यह बड़ा हठी भक्त है। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उसकी जिद रख ली और उसे वरदान दिया—

जाओ ! आज से मुझमें तुम्हारी निर्मल भक्ति बनी रहेगी ।

केवट ने सब कुछ पा लिया । रामजी की निर्मल भक्ति को पाने के लिये बड़े-बड़े सिद्ध योगी, देवता एवं शंकरजी तक तरसते रहते हैं, वही केवट ने प्राप्त कर ली । यही नहीं उसे सामीप्य भक्ति का भी सुखद सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

केवट राम सम्वाद श्रद्धालु जनों के मन में रामजी के प्रति निर्मल भक्ति देने वाला है । भक्त जनों का कण्ठहार है और है भक्ति का स्वर्णिम सिंगार ।

लक्ष्मण निषाद संवाद

रामजी के प्रिय भक्तों में लक्ष्मणजी का श्रेष्ठ स्थान है । लक्ष्मणजी के समान किसका सौभाग्य है । उन्होंने अपना सब कुछ त्यग कर चौदह वर्षों तक वन में रामजी की सेवा की । इतनी उत्कृष्ट साधना किसकी है जो चौदह वर्षों तक रामजी के लिये सर्वस्व त्याग दिया । स्त्री छोड़ी, नींद छोड़ी और यहाँ तक कि विश्राम भी छोड़ दिया ।

लक्ष्मणजी के समान निषाद भी राम के भक्तों में सादर प्रतिष्ठित है । उसने भी बिना रामजी के कहे निस्वार्थ भाव से सब कुछ उन्हें अर्पित कर दिया । लक्ष्मण-निषाद संवाद रामजी के दो भक्तों का रामजी के ही प्रति है जो भक्तों के मन में राम-चरणों के प्रति अविछिन्न प्रीति उत्पन्न करता है ।

शृंगवेरपुर में जब रामजी शीशम के वृक्ष के नीचे निषाद द्वारा तैयार किये गये आसन पर सो गये तो लक्ष्मणजी कुछ दूरी पर हाथ में धनुष वाण लिए वीरसन लगाए रात भर जागते रहे ।

कछुक दूरि सजि वान सरासन, जागन लगे बैठि वीरासन

निषाद भी इस मामले में पीछे नहीं रहना चाहता था । उसने भी विश्वासी सेवकों को पहरेदारी के लिये बुला लिया और बड़े ही प्रेम से स्थान

स्थान पर उन्हें नियुक्त कर दिया। वह स्वयं लक्ष्मणजी के साथ तूणीर बांध कर हाथ में धनुष वाण लेकर पहरे दारी पर बैठ गया।

गुह बुलाइ पाहरू प्रतीती ठांव-ठांव राखे अति प्रीति
आपु लखन पहं बैठेउ जाइ कटि भाथी सर चाप चढ़ाइ

निषाद राज ने रामजी को भूमिपर सोते हुए देखा तो रोमांचित हो उठा और नेत्रों से अश्रु बहने लगा। रामजी का अद्‌भुत सौन्दर्य देख कर वह भक्ति वश कहने लगा—

बिविध बसन उपधान तुराई, छीर फेन मृदु बिसद सुहाई

रामजी अयोध्या में न जाने कैसे विस्तरों पर सोते होंगे। वहाँ न जाने कितने दूध के फेन के समान कोमल, सफेद और सुन्दर बिछावन तकिए और पड़े रहते होंगे। हा! दुर्दैव! उन राम और जानकी को आज घास पत्तों के बिछावन पर बिना चादर के थके हुए सोते देखा नहीं जाता।

ते सिय राम साथरी सोये, श्रमित बसन बिन जाहिं न जोए

जो सभी प्राणियों के प्रभु हैं. वे ही आज धरती पर सोये हैं और रामजी जिनके पति हैं वे ही जानकी जी आज़ धरती पर पड़ी हैं। सचमुच बिधाता सबको बिना सताए चैन नहीं लेता है—

रामचन्द्र पति सो वैदेही, सोवत महि बिधि वाम न केही

इतना सब सोच कर निषादराज मोह से ग्रस्त हो गया और कैकेयी को भी धिक्कारने लगा। निषाद को विषाद युक्त देख कर लक्ष्मण जी कहने लगे—

काहु न कोउ सुख-दुख कर दाता निज कृत करम भोग सब भ्राता
जोग बियोग भोग मल मंदा, हित अनहित मध्यम मम फंदा,

हे बन्धु! न तो कोई किसी को सुख देता है और न दुःख। सब को अपने-अपने किए का फल भोगना पड़ता है। मिलना और बिछुड़ना, अच्छे और बुरे भोग, मित्र, शत्रु तथा उदासीन ये सब तो भ्रम के फन्दे हैं।

निषाद का विषाद एवं मोह दूर करने के लिये शेषावतार लक्ष्मण जी कहते हैं यहाँ तक संसार में जन्म और मरण का जाल फैला है, जहाँ तक सम्पति, विपत्ति धरती धन, घट, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक आदि का व्यवहार दिखाई पड़ता है उसे भली भांति देखा सुना और समझा जाय तो जान पड़ेगा कि सबका कारण मोह (अज्ञान) है, परमार्थ (ज्ञान) नहीं है—

जनम मरन जहं लगि जग जालू, संपत्ति विपत्ति करम अरु कालू
धरनि धाम धन पुर परिवारु, सरग नरक जहं लगि व्यवहारु
देखिय सुनिय गुनिय मन माही, मोह मूल परमारथ नाहीं

हे निषाद ! यह संसार ही स्वप्नवत है। स्वप्नमें जैसे राजा भी भिखारी हो जाता है और दरिद्र भी स्वर्ग का राजा बन बैठता है पर जागने पर किसी को न कोई लाभ होता है न हानि, न कोई राजा बनता है न भिखारी। वही दशा इस संसार की भी समझनी चाहिये।

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाक पति होइ
जागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जिय जोइ

हे निषाद ! ऐसा समझ कर मन में रोष न कीजिये। इस मोह रूपी रात्रि में सभी सोते हैं और अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं। देखो ! रात्रि में भी मैं जाग रहा हूं योगी जन ही मोहरूपी रात्रि में जागते हैं और परमार्थ में लगे रह कर जगत के प्रपंच से दूर रहते हैं।

ऐहि जन जामिनि जागहि जोगी, परमारथी प्रपंच वियोगी

निषाद राज का मोह दूर करना जरूरी था। जब तक मोह रूपी रात्रि दूर नहीं होती है तब तक राम जी रूपी ज्ञान सूर्य का दर्शन सम्भव नहीं है। लक्ष्मणजी ने पहले निषाद का मोह दूर किया फिर रामजी के शाश्वत स्वरूप की चर्चा की—

होइ विवेक मोह भ्रम भागा तब रघुनाथ चरन अनुरागा

देखो ! ज्ञान की आँख खुलते ही जब मोह (अज्ञान) का सारा भ्रम दूर हो जाता है तभी रामजी के चरणों में प्रेम जाग पाता है। और सबसे बड़ा परमार्थ रामजी के चरणों में मन क्रम वचन से भक्ति करना है। यह राम तत्व क्या है अब उसे सादर सुनियें—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा, अविगत अलख अनादि अनूपा
सकल विकार रहित गत भेदा कहिनित नेति निरुपहि वेदा

हे सखा ! रामजी ही तो परम तत्व और परम ब्रह्म हैं जिन्हें ठीक-ठीक जाना ही नहीं जा सकता, जो अलख आदि रहित और उपमा रहित है जिनका वास्तविक रूप कोई देख नहीं पा सकता जो सदा से हैं और जिनके जैसा दूसरा है ही नहीं जिनमें कभी विकार (परिवर्तन) नहीं होता जो सदा एक जैसे रहते हैं जिनके लिये सब समान हैं और वेदों ने सदा नेति नेति (इतना ही नहीं) कह कर परिचय दिया है। वही हैं ये रामजी और रामतत्व भी यही है।

ऐसे परात्पर ब्रह्म रामजी कितते कृपालु हैं कि अपने भक्त, पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवता के कल्याण के लिये मनुष्य का रूप बना कर ऐसी-ऐसी लीलायें करते हैं जिन्हें सुनने भर से जगत के बवाल दूर हो जाते हैं।

भगत भूमि भुसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाला
करत चरित धरि मनुज तन सुनत मिटहिं जन जात

हे मित्र निषाद। मोह का त्याग करो और सीताजी तथा रामजी के चरणों से प्रेम करो।

सखा समुझि अस परिहरि मोहू सिय रघुवीर चरन रत होहू

लक्ष्मण निषाद सम्वाद छोटा होते हुए भी कितना गूढ़ है। यह भक्तों का मोह दूर कर रामजी के परम शाश्वत रूप से परिचय कराने वाला है परमार्थ का ही रक सोपान है और है सज्जनों का प्रण। धन्य है निषाद राज जिसके बहाने शेषावतार लक्ष्मणजी ने जगत कल्याण के लिये यह संदेश दिया।

निषाद भरत संवाद

राम चरित मानस का यह एक अति रोचक एवं भक्ति रस पूर्ण संवाद है। पर इन सब के अतिरिक्त इस सम्वाद का एक और अति गूढ़ रहस्य है। वह यह कि भक्त अपने अराध्य से ऐसा तादात्म्य स्थापित कर लेता है कि फिर वह 'स्व' के दायरे से बाहर निकल कर एक ऐसे विराट समतल पर अवस्थित हो जाता है जहाँ उसे सम्पूर्ण विश्व ही राममय लगता है। वह कण-कण में जड़-चेतन में राम का ही दर्शन करता है। उसके लिये तो सम्पूर्ण चराचर जगत ही 'सिय राम मय' बन जाता है। उसका प्रत्येक कर्म इश्वर को अर्पित होता है और हर काज रामकाज बन जाता है।

निपादराज को यही उत्कृष्ठ भावमयी भक्ति प्राप्त हुई थी। वह अपना समस्त परिवार, धन, साधन, मित्र, पुरजन राम के चरण कमलों में अर्पित कर बैठा और फिर जब वह इस विराट भाव जगत का भाग्यशाली प्राणी बन गया तो फिर उसका अपना रहा ही क्या? सब कुछ तो रामजी का हो गया। अपने रामजी के लिए जीना और उन्हीं के लिए मरना उसका अपना परम धर्म बन गया।

भगवान राम से मिलने के लिए भरतजी चित्रकूट जाते हैं। उनकी भी अद्भुत स्थिति है। रामजी के बिना तो वे अयोध्या में रह भी नहीं सकते हैं और न अयोध्या की किसी वस्तु का उपयोग ही कर सकते हैं। कारण कि सब कुछ नो रामजी का ही है। बिना उनकी आज्ञा के किसी का स्पर्श करना भी उनके लिए महापातक के समान है। जब सब कुछ रामजी का है तो फिर उसे रामजी को ही क्यों न अर्पित कर दिया जाए। यही सोच कर वे अयोध्या की सम्पूर्ण चतुरंगिणी सेना के साथ रामजी से मिलने के लिए चित्रकूट की ओर चल पड़ते हैं। भरतजी को रामजी के चरणों में यह प्रीति विश्वास एवं भावना अपने में सब प्रकार से अनुपम है।

इधर निषादराज भी रामजी के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पित कर चुका है। जब उसने सुना कि भरतजी ससैन्य आ रहे हैं तो वह रामजी के प्रति अपनी अभंग प्रीति वश सोचने लगता है।

कारन कवन भरत बन जाहीं है कछु कपट भाउ मन माहीं
जौं पै जिय न होति कुटिलाई तौ कत कीन्ह संग कटकाई

क्या कारण है कि भरतजी सेना लेकर रामजी से मिलने के लिए आ रहे हैं। अवश्य ही दाल में कुछ काला है। उनके मन में कुछ खोंट अवश्य है। यदि मन में खोंट न होती तो सेना लेकर क्यों आते?

निषाद राज का यह सोचना अस्वभाविक नहीं था। वह आगे फिर सोचता है कि राम जी को अकेले जानकर शायद भरतजी उन्हें मारना चाहते हैं जिससे कि उनके मार्ग का कंटक हट जाए। जब रामजी अपने भक्त की हर प्रकार से रक्षा करते हैं तो फिर भक्त उनके लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने के लिए क्यों न तैयार रहे। निषादराज की भुजा फड़क उठी है और वह घाट पर लगी सभी नौकाओं को डुबो देने का आदेश देता है जिससे कि घाटारोह हो जाए और भरतजी गंगाजी को पार न कर सकें। इतना ही नहीं वह सभी पुरजनों परिजनों को मरण के ठाट सजाने के लिए कहता है उसका दृढ़ संकल्प है—

सनमुख लोह भरत सन लेऊ, जियत न सुरसरि उतरन देऊँ

वह इस अवसर को अपने लिए परम सौभाग्यशाली मानता है। कारण कि उसे अपने रामजी के लिए कुछ करने का मौका मिल गया—

समर मरन पुनि सुरसरि तीरा, राम काज छन भंगु सरीरा

वह कहता है कि बड़े भारी पुण्य का उदय हुआ है। एक तो युद्ध भूमि में वीरगति पाना वह भी गंगाजी के पावन तट पर और फिर यह क्षण भंगुर शरीर रामकाज के लिये काम में आयेगा। धन्य हैं निषादराज और धन्य हैं राम के चरणों में उसकी यह दृढ़ प्रीति। बस अब जुझाऊ ढोल बज उठा। लेकिन सर्वव्यापी राम भला अपने दो भक्तों में संघर्ष कैसे होने देते। उन्हीं की प्रेरणा से निषादराज को परीक्षा में खरा उतरने का सुयोग भी मिला और फिर दो भक्तों के अलौकिक मिलन का भी स्वर्ण अवसर।

निषादराज एक बूढ़े सगुनियाँ की सलाह से भरतजी से मिलने के लिए चल पड़ा। साथ में भरतजी के लिये उपहार भी थे। उसने जैसे ही भरत जी को देखा प्रथम महामुनि वशिष्ठजी को प्रणाम किया।

देखि दूरि ते कहि निज नामू कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू

वशिष्ठ ने भी उसे राम का परम प्रिय जानकर आशीर्वाद दिया और भरतजी से कहा कि यह रामजी का सखा है। बस अब क्या था भरतजी को तो जैसे रामजी ही मिल गये। कारण कि भक्त के लिये अपने आराध्य देव एवं उनके सखा में कोई भेद नहीं जान पड़ता है।

भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर्नाम वपु एक

भरत जी ने जैसे ही सेना कि यह तो रामजी का सखा है उन्होंने अपना अश्व त्याग दिया और निषादराज से मिलने के लिए अनुराग से लबालब भर कर दौड़ चले—

राम सखा सुनि स्यंदन त्यागा चले उतरि उमगत अनुरागा

निषादराज ने अपना नाम गृह एवं जाति बताकर भरतजी को धरती तक माथा टेक कर प्रणाम किया, और भरतजी ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया। उनके हृदय से इतना स्नेह छलक रहा था कि मानों लक्ष्मण जी से ही भेंट हो गई है। भक्ति की गंगा एवं यमुना का यह अलौकिक संगम था। उस स्थल पर न पद की मर्यादा रही और न नीच ऊँच की। यह मिलन देख कर देवता भी प्रसन्नता से सराहना करके पुष्प वर्षा करने लगे। भरतजी सोचने लगे कि जब राम नाम कह कर जम्हाई लेने से समस्त पाप पुंज नष्ट हो जाते हैं तब इस निषाद को जिसे स्वयं रामजी ने छाती से लगा लिया और इसके समस्त परिवार को ही पवित्र तम बना दिया यह तो रामजी के ही समान हो गया। वे मन ही मन विचार करते हैं—

राम राम कहि जे जमुहाहीं, तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं
एहि तो राम लाइ उर लीन्हा, कुल समेत जल पावन कीन्हा
करमनास जल सुरसरि पाई, तेहि को कहहु सीस नहिं धरई

कर्मनाशा नदी का जल जब गंगाजी में मिल जाता है तो उसे कौन शीश पर नहीं चढ़ाता है। अगर मैं निषादराज को शीश पर भी बिठा लूँ तो भी मेरे बड़े भाग्य हैं। भरतजी के इस मिलन को देख कर देवताओं को राम नाम की महिमा का स्मरण हो आता है।

उलटा नाम जपत जग जाना बालमीकी भय ब्रह्म समाना
स्वपच सबर खस जमन जड़ पांवर कोल किरात
राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात

राम नाम की तो ऐसी विशद महिमा है कि बाल्मीकी उलटा नाम मरा मरा जप कर ब्रह्म के समान हो गये। इतना ही नहीं राम के नाम का ऐसा विचित्र प्रभाव है कि यदि श्वपच (चाण्डाल) शबर, खस, यवन काल किरात आदि जातियाँ भी 'राम' का नाम ले लें तो परम पवित्र हो जाएं और संसार

में उनका यश फैल जाय। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि राम के नाम ने किसे यश नहीं दे डाला ?

इस प्रकार देवतागण जब राम के नाम की यह महिमा सुना रहे थे उसे सुन सुन कर अयोध्या के लोग बड़े प्रसन्न होते जा रहे थे। अब निषाद राज की भी स्थिति को देख लिया जाय—

देखि भरत कर सील सनेहू भा निषाद तेहि समय विदेहू
सकुच सनेह मोद मन बाढ़ा भरतहिं चितवत एकटक ठाढ़ा

निषादराज तो अपनी सुध-बुध ही खो बैठा। उसके मन में संकोच भी हुआ कि भरतजी मेरे ऐसे नीच को गले से लगा रहा है। पर मन में भरत के शील का स्मरण करते ही वह इतना अधिक भाव विभोर हो गया कि उनके मुख को अपलक निहारता रहा। भावाधिक्य में वाणी का अवरुद्ध हो जाना स्वाभाविक होता है। उसने बड़ा धीरज धारण करके कहा—

कुसल मूल पद पंकज पेखी, मैं तिहुंकाल कुसल निज लेखी
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे, सहित कोटि कुल मंगल मोरे

भरतजी के द्वारा कुशल क्षेम पूछे जाने पर वह कहता है कि आपके जिन चरण कमलों से कुशल ही कुशल उत्पन्न होती है उन्हें देखकर मैंने मान लिया है कि अब मेरे भूत वर्तमान एवं भविष्यत कुशल पूर्ण हैं। अब तो आप की कृपा से मेरा तथा मेरे करोड़ों कुलों का मंगल ही मंगल है।

निषादराज ने ठीक ही कहा है। रामजी तो मंगल भवन हैं। उनकी शरण में जानेवाले का अमंगल कैसे हो सकता है। निषादराज सोचता है कि राम नाम की महिमा तो देखिये मैं कितना नीच हूं। रामजी ने मुझे गले से लगा लिया और मैं भुवन भूषण बन गया—

राम कीन्ह आपन जब ही ते, भयउ भुवन भूसन तब ही ते

भरत और निषादराज का यह लघु किन्तु भावश्वी आख्यान राम नाम की अपार महिमा का उद्‌घाटन करता है। धन्य है निषादराज जिसने राम की भक्ति की सुरसरि धारा में जी भर स्नान किया और भक्तों को उपदेश दिया कि जो ऐसे महानतम करुणा कर की शरण में नहीं जाता उसे सचमुच विधाता ने ठग लिया है।

जो न भजइ रघुबीर पद, जग विधि बंचक सोइ

राम भरत सम्वाद :

भक्ति एवं वैराग्य की भागीरथी

भरतजी का चारु चरित्र बड़ा ही अद्‌भुत, उज्ज्वल एवं आदर्श है। वह एक ऐसे नगाधिराज की भांति जगमगा रहा है जिसमें कहीं भी कोई कालिमा नजर नहीं आती है। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार भरतजी की महिमा का सागर उतना अपार है जिसको शेष शारदा एवं नारद भी पार नहीं कर सकते हैं। मानस में तो उन्हें भगवान विष्णु का ही अंश माना गया है—

विस्व भरन पोषन कर जोई ताकर नाम भरत अस होई

जो सकल संसार का भरण पोषण एवं पालन करता है उसी का नाम भरत है। भगवान विष्णु पालन के देवता है और भरतजी का भी वही धर्म है।

उनका चरित्र उन्हें एक साधु शिरोमणि आदर्श स्वामिभक्त महात्मा निस्पृह और भक्ति प्रधान कर्मयोगी सिद्ध करता है। वे धर्म और नीति के जानने वाले सद्‌गुण सम्पन्न, त्यागी, संयमी, सदाचारी, प्रेम एवं विनय की साक्षात मूर्ति हैं। रामजी के प्रति उनकी भक्ति इतनी उत्कृष्ट है कि उनके भक्तों को भी वे रामजी के समान ही सम्मान देते हैं। निषादराज गुह एवं हनुमान का दृष्टान्त हमारे सामने है।

भरतजी जब रामजी को लौटा लाने के लिये चित्रकुट जाते हैं और निषादराज गुह से राम के विषय में जो पूछते हैं वह रामजी के प्रति उनके अमित श्रद्धा भाव का प्रमाण है। वे पूछते हैं—

निषादराज! उस दिन रात को मेरे भाई श्री रामजी सीता और लक्ष्मण के साथ यहां किस जगह ठहरे थे तथा उन्होंने क्या भोजन करके कैसे बिछौनों पर शयन किया था? सब मुझे बताओ। (वा०रा० २।८७।१३।)

वे रामजी के प्रत्येक क्रिया कलाप की खबर रखना चाहते हैं। यही नहीं राम के बिना तो वे सुरलोक से भी सम्पन्न अयोध्या में ऐसे निर्लिप्त एवं विराग भाव से रहते थे जैसे चम्पक बन में कोई भंवरा रहता है।

तेहि पुर बसहि भरत बिनु रागा चंचरीक जिमि चंपक बागा

चम्पा का फूल सुन्दर भी होता है और सुवासित भी पर भंवरा उससे विरक्त रहता है। ऐसी है भरत चरित्र की महिमा। रामजी के साथ चित्रकूट में उनका जो सम्वाद हुआ वह तो भक्ति ज्ञान एवं वैराग्य का तीर्थ-राज ही है।

रामजी वन को चले गये। भरत को राज्य मिला पर बिना रामजी के अयोध्या किस काम की? वे समस्त सेना लेकर ही रामजी को वापस लौटाने के लिये चल पड़े। महाज्ञानी वशिष्ठजी से उनका एक ही हठ है कि जिस भाँति हो रामजी को अयोध्या वापस ले आया जाय। वशिष्ठ जी ने भरत से कहा कि तुम शत्रुघ्न के साथ वन को जाओ और रामजी को अयोध्या ले आया जाय। भरतजी पुलकित हो गये। रामजी के प्रति उनका अपार स्नेह देख कर महामुनि को भी अपने तन मन का होश न रहा। वे खो बैठे अपनी सुध बुध। भरतजी की विराट महिमा के समुद्र के तीर पर मुनि वशिष्ठ की बुद्धि उस अवला के समान भौंचक खड़ी रह गई जो पार तो जाना चाहती है पर कोई साधन है। मुनि वशिष्ठजी को लगा कि भरत जी के मुकाबले कोई सज्जन है नहीं।

रामजी भी मुनिनाथ से कहने लगे कि अब तो सब कुछ आपके ही हाथ है। भक्त की प्रीति के आगे गुरु एवं गोविन्द दोनों निरुत्तर हो गये। तब भरतजी गुरु की आज्ञा से स्वयं बोलने लगे। उस समय उनका सारा शरीर रोमांचित हो उठा नयनों से अश्रु वह चले।

मैं जानउ निज नाथ सुभाऊ अपराधिहु पर कोह न काऊ

मैं अपने नाथ रामजी का स्वभाव जानता हूँ। वे तो अपराधी पर भी क्रोध नहीं करते। फिर बचपन से ही मुझ पर उनका विशेष स्नेह रहा है। उन्होंने कभी भी मेरा मन तोड़ा नहीं—

सिसुपन ते परिहरेउं न संगू कबहुं न कीन्ह मोर मन भंगू

ये तो ऐसे कृपालु एवं भक्त का मान रखने वाले हैं कि बचपन में यदि खेलते समय में हार भी जाता था तो वे विजयी बना देते थे। आज मैं ही वह अपराधी हूं जिसके कारण रामजी को वनवास मिला—

महीं सकल अनरत कर मूला सो सुनि समुझि सहउ सब सूला

भरतजी की सच्चे हृदय से निकली वाणी को सुन कर सारी सभा शोक मग्न हो गई मानो कमल वन में पाला पड़ गया है। तब रामजी ने समझाते हुए कहा—

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल सार
लोक सुजस परलोक सुख सुमिरत नाम तुम्हार

देखो भरत ! तुम्हारा नाम तो इतना पवित्र है कि उसे स्मरण करते ही समस्त पाप, छल, कपट, अशुभ तत्काल मिट जाते हैं और स्मरण कर्ता को इस लोक में यश तथा परलोक में सुख मिलता है। मैं शंकर को साक्षी देकर सच कहता हूं कि यह धरती तुम्हारे ही पुण्य से टिकी हुई है। मैं तुम्हें तो भली भांति जानता हूं फिर तुम्हें किस बात का असमंजस है—

तात तुम्हहि मैं जानउं नीके करउं काह असमंजस जीके

हे भरत ! मुझे वनवास मिला है। पिता की आज्ञा टालते मुझे बड़ी उलझन हो रही है। पर उससे भी अधिक मुझे तुम्हारा संकोच है। फिर भी भरतजी अपने को ही दोष दे रहे हैं—

मोर अभाग मातु कुटिलाई विधिगति विषम कलि कठिनाई

यह सब मेरे खोटे भाग्य एवं माता की कुटिलता का परिणाम है। इनके साथ समय के फेर ने तो मेरा सत्यानाश ही कर डाला। रामजी की करुणा पर भरत को पूर्ण विश्वास है। वे बहुत ही कम बोलते हैं पर जो कुछ बोलते हैं वह सरल, मधुर किन्तु गूढ़ ही होता है।

भरत जी के स्वभाव की पूरे समाज के साथ राजा जनक भी सराहना करने लगे।

भरत वचन सुनि देखि सुभाऊ सहित समाज सराहत राऊ
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे अरथ अमित अति आखर थोरे

उनके वचन सुनने में तो बहुत सीधे सादे लगते थे, पर उनकी गहराई में पैठ कर उनका अर्थ समझ पाना कठिन था। वे सुनने में मधुर थे किन्तु

दृढ़ता थी। रामजी के प्रति भरतजी की भक्ति एवं भरतजी के प्रति रामजी का अगाध स्नेह देख कर देवता भी डर गये उन्हें भय हुआ कि कहीं रामजी अयोध्या को लौट न जाय और राक्षसों का विनाश न हो। उन्होंने सरस्वती से प्रार्थना की कि वे भरत की मति फेर दे। इस पर वाणी सरस्वती ने कहा :—

भरत हृदय सियराम निवासु तहं कि तिमिर जहं तरनि प्रकासू

भरतजी के हृदय में तो सीता राम का निवास है। जहां सूर्यका प्रकाश है वहां अन्धेरा कैसे रह सकता है। यह काम मेरे बलबूते का नहीं है कि भरतजी की मति फेर सकूं। ऐसी ही भरतजी की महिमा।

चित्रकूट में सारी सभा केवल भरतजी के मुंह को ही देख रही थी कि वे क्या बोलते हैं। भरतजी ने अपने अन्तर की समस्त भावना को उसी प्रकार रोक लिया जैसे मुनि अगस्त्य ने समुद्र को पी डाला था। भरतजी ने सीताजी एवं रामजी का हृदय में ध्यान धर के कहा :—

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी पूज्य परम हित अन्तरजामी
सरल सुसाहिब सील निधानू प्रनतपाल सर्वग्य सुजानू
समरथ सरनागत हितकारी गुन गाहक अवगुन अघहारी
स्वामी गोसाइंहि सरिस गोसाईं मोहि समान मैं साइं दोहाई

प्रभो! आप मेरे पिता, माता, मित्र, गुरु और स्वामी भी हैं तथा परम पूज्य, परम हितकारी और अन्तर्यामी भी हैं। आप इतने सरल, शील-वान, भक्त पालक, सर्वज्ञ ज्ञानी और समर्थ स्वामी हैं कि जो आपकी शरण में पहुंच जाए आप उसका कल्याण कर देते हैं। आप सबके गुण ही गुण ग्रहण करते रहते हैं और अवगुण रूपी पाप दूर कर डालते हैं। स्वामी! यदि कोई आपके समान है तो केवल आप ही हैं और इधर मेरे समान भी यदि कोई स्वामी द्रोही है तो मैं ही हूं।

कितनी सरल एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति है भरतजी की। वे कहते हैं कि मुझ-सा धृष्ट और कौन होगा जो पिताजी एवं आपके वचनों को टाल कर अकेले नहीं पूरा समाज ही यहां लेकर आ गया है। भरतजी की दृष्टि में रामजी की आज्ञा का उल्लंघन करना महापातक है। वे बिना रामजी की आज्ञा के ही चित्रकूट पहुंच गये। किन्तु वे कहते हैं कि प्रभु कितने अच्छे

है कि मेरी धृष्टता को ही सेवक धर्म मान बैठे हैं। भरत जी जानते हैं कि रामजी की प्रीति रीति सारे भुवन में विख्यात है—

जानत प्रीति रीति रघुराई

संसार में ऐसा स्वामी कौन है जो अपने सेवक की प्रशंसा एवं रक्षा करते हुए उसे अपने समान बना दे। ऐसा तो रामजी ही करते हैं।

को साहिब सेवकहिं नेवाजी आपु समान साज सब साजी

भरतजी कहते हैं कि मैं भुजा उठा कर कहता हूं आपके अतिरिक्त दूसरा और स्वामी मुझे नहीं दिखलाई पड़ता है।

सो गोसांइ नहि दूसरा कोपी भुजा उठाइ कहां पन रोपी

भरतजी को पूर्ण विश्वास है कि रामजी भक्तों के अवलम्ब हैं लेकिन उन्हें सहारा देकर साधुओं से भी ऊंचा उठा देते हैं। भरतजी कहते हैं कि यहां आने का मुझे यह लाभ मिला है कि आपके चरण-कमलों का दर्शन तो मिल गया। जब आपके चरणों का दर्शन मिल गया तो सब कुछ अब मेरे अनुकूल है—

दखउं पांय सुमंगल मूला जानेउं स्वामि सहज अनुकूला

इतना कहने के बाद भरतजी को लगा कि शायद वे अधिक बोल रहे हैं। वे नीतिज्ञ हैं और जानते हैं कि मित्र, ज्ञानी और भले स्वामी के सामने अधिक बोलना अच्छा नहीं होता है—

सुहृद सुजान सुसाहिबहिं बहुत कहब बड़ि खोरि

वे रामजी से कहते हैं कि हे देव ! अब आप मुझे आज्ञा दें और वही करें जिससे मेरा कल्याण हो। भरतजी को प्रभु रामजी के चरण-कमलों की रज से बढ़ कर न तो कोई सत्य लगता है और न कोई पुण्य कार्य। वे कहते हैं हे नाथ ! मैं अपने हृदय की बात स्पष्ट कहे देता हूं कि मुझे जागते, सोते

और स्वप्न देखते सदा यही अच्छा लगता है कि मैं स्वार्थ छल और चारों फलों की इच्छा त्याग कर स्वाभाविक स्नेह से आपकी सेवा करता रहूं। हे देव ! स्वामी की आज्ञा पालन करने के समान स्वामी की और कोई सेवा नहीं हो सकती। इस दास की भी यही इच्छा है कि मुझे भी वही प्रसाद मिले—

अग्या सम न सुसाहिब सेवा सो प्रसाद जन पावइ देवा

इतना कह कर भरतजी प्रेम में इतने मग्न हो गये कि उनका सारा शरीर रोमांचित हो उठा और आंखें छलछला आईं। उन्होंने विमल ही दौड़ कर प्रभु रामजी के चरणों को पकड़ लिया। गोस्वामीजी कहते हैं कि भरत की उस समय जो दशा हुई उसका और उनके उत्तर स्नेह का वर्णन कोई नहीं कर सकता है। सभी लोग भरत के भातृ प्रेम एवं प्रभुजी के प्रति भक्ति-भावना की सराहना कर उठे। तब प्रभु रामजी ने उन्हें अपने समीप बैठा लिया।

भरतजी का निर्मल यश उस चन्द्रमा के समान है जो भक्तों के निर्मल हृदय रूपी आकाश में सदा उदित हुआ होता रहता है और जिसे बुद्धि रूपी चकोरी भौंचक होकर एकटक देखती रह जाती है।

भरत बिमल जस बिकल बिधु सुमति चकोर कुमारि
उदित बिमल जन हृदय नभ एक टक रही निहारि

भरतजी को अपने समीप बैठा कर रामजी ने कहा—

तात भरत तुम धरम धुरीना लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना
करम बचन मानस बिमल तुम समान तुम तात
गुरु समाज लघु बंधु गुन कुसमय किमि कहि जात

दखो भाई भरत तुम धर्म को संभालने वाले हो, लोक की मर्यादा और वेद की आज्ञा दोनों भलीभांति जानते हो, तुम्हारा प्रेम भी अद्वितीय है। तुमने मन, वचन एवं कर्म से कभी दोष नहीं किया। तुम्हारे सामने यदि कोई है तो तुम्हीं हो, जहां इतने गुरुजन बैठे हों वहां ऐसे कुसमय में छोटे भाई के गुणों का वर्णन करना अच्छा नहीं लगता। फिर भी मुझे तुम्हारे गुणों का वर्णन करना अच्छा लगता है।

देखो ! इस कुसमय में अयोध्या के राज्य, पुरजन, परिजन आदि की सम्भाल गुरुदेव वशिष्ठजी की कृपा से हुई है और आगे भी होगी। अब तुम वही कार्य करो जिससे सूर्यवंश के यश की रक्षा हो और प्रजा तथा परिवार सुखी हो।

सो बिचारि सहि संकट भारी करहु प्रजा परिवार सुखारी

रामजी को अपने अनुकूल देख कर भरतजी को परम सन्तोष हुआ। भरतजी ने हाथ जोड़ कर कहा कि आपके वचन सुन कर मुझे जो सुख आपके साथ जाने में मिलता है वह मिल गया और मेरा जन्म भी सफल हो गया। अब मेरे लिये जो आज्ञा हो, मैं उसे सिर माथे पर चढ़ा कर पालन करूंगा। फिर रामजी की सलाह एवं अत्रि मुनि की आज्ञा से उन्होंने चित्रकूट के तीर्थों का दर्शन भी किया। दूसरे दिन जब फिर सभा जुड़ी तो रामजी फिर संकोच में पड़ गये कि वे भरतजी से कैसे कहें कि आज अच्छा दिन है आज ही अयोध्या लौट जाओ—

भल दिन आज जानि मन माहीं राम कृपालु कहत सकुचाहीं

भरतजी ने देखा कि रामजी अब संकोच में पड़ गये। उन्होंने प्रणाम करके स्वयं चर्चा चला दी—

अब गोसाईं मोहि दे रजाई सेवउं अवध अवधि भर जाई

हे स्वामी अब आज्ञा दीजिये कि मैं अवधि भर (१४ वर्षों) अयोध्या की सेवा करता रहूं।

भरतजी के ये वचन सुन कर रामजी ने उन्हें अनेक प्रकार से साहस बंधा कर राजधर्म की बातें बतलाईं। उन्होंने कहा कि भरत तुम प्रजा का पुत्रवत पालन करना। गुरुदेव वशिष्ठ, माता, सचिव आदि की सलाह मानना। तुम्हीं अब अयोध्या के मुखिया (प्रधान) हो और प्रधान मुखिया को तो मुख के समान होना चाहिये जो खाता-पीता तो अकेले हैं पर विवेक-पूर्वक जिस अंग के लिये जितना आवश्यक होता है उतना ही पोषण देकर पालन करता है।

मुखिया मुख सो चाहिये खान-पान कहुं एक
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित बिबेक

बस राजधर्म का सार इतना ही है इतना कह कर रामजी ने भरतजी का मन रखने के लिये अति कृपा करके उन्हें अपनी खड़ांऊ दे दी, जिन्हें भरतजी ने सादर शीश पर चढ़ा लिया।

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं सादर भरत सीस धरि लीन्हीं

फिर प्रेम पूर्वक उन्होंने भरतजी को विदाई दी। भरतजी के जाने के बाद रामजी ने सीताजी लक्ष्मण से भरत के शील एवं स्वभाव की बहुत चर्चा की। उधर भरतजी ने रामजी की जगह सिंहासन पर उनकी पादुका ही रख दी और स्वयं तपस्वी का भेष धारण कर नंदिग्राम में रहने लगे।

राम भरत सम्वाद भक्तों का हृदयहार है, यह भक्ति का सिंगार है ज्ञान की ज्योति धार है और है मोक्ष का साधन द्वार। गोस्वामीजी कहते हैं कि भरतजी का यह चरित्र जो नियम पूर्वक आदर से सुनेंगे उनके मन में रामजी एवं सीता के चरणों की प्रति अवश्य उत्पन्न होगी तथा संसार के सुख भोगों से विराग होगा।

भरत चरित कर नेम तुलसी जो सादर सुनहिं
सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भव रस विरति

राम अत्रि सम्वाद्

राम चरित मानस के अरण्यकाण्ड में वर्णित राम-अत्रि-संवाद भक्ति की मंदाकिनी का अनु'न स्रोत नगाधिराज हिमालय है। जिस प्रकार नगाधिराज से गंगा निकल कर लोक जीवन को मुदमंगल मय करती है उसी भांति यह परम पावन सम्वाद भी जहां भक्तजनों को मुदित करता है वहीं अनीश्वरवादियो में भी भक्ति रस का संचरण कर उन्हें रामजी के चरणारविंद का प्रेमी रसिक मधुप वना देता है।

भगवान भक्त के द्वार पर स्वयं पधारते हैं और उन्हें साक्षात देख कर भक्त की क्या दशा होती है इसका सम्यकदर्शन हमें महर्षि अत्रि के चरित्र में मिलता है। फिर रामजी कितने विनम्र, मर्यादाशील एवं भक्त वत्सल है इसका भी परिचय हमें इसी संवाद में मिलता है। रामजी परात्पर ब्रह्म है पर भक्त की मर्यादा रखने के लिये स्वयं उसके चरणों में झुक जाते हैं। धन्य है अवध किशोर दशरथनन्दन और धन्य है उनका पावन चरित्र।

महर्षि अत्रि त्रेता युग के परम श्रेष्ठ महात्मा थे। लोक प्रसिद्ध सती अनुसूया उनकी धर्मपत्नी थी। मंदाकिनी (चित्रकूट) के तट के समीप ही उनका आश्रम था। चित्रकूट में कुछ दिन ठहरने के पश्चात रामजी भाई लक्ष्मण एवं सीता सहित सभी मुनियों से विदा मांग कर आगे चल पड़े थोड़ी ही दूर पर अत्रि मुनि का आश्रम था। भगवान राम वहां पहुंच गये—

अत्रि आसरम जब प्रभु गयऊ सुनत महामुनि हरषित भयऊं

जब राम चलते चलते महामुनि अत्रि के आश्रम में पहुंचे तो उनके आगमन का समाचार सुनते ही महामुनि अत्यन्त पुलकित हो गये। उन्हें रोमांच हो आया और उनके हर्ष की सीमा न रही। वे गद्गद् होकर दौड़ पड़े और उन्हें अपनी ओर दौड़ता हुआ आता देख कर रामजी भी पग बढ़ाए आगे को चल पड़े—

पुलकित गात अत्रि उठि धाए देखिराम आतुर चलि आए

आखिर भक्त ही तो भगवान के सर्वस्व है। वे क्यों न आगे बढ़ कर भक्त का सम्मान करते ? रामजी केवल आगे ही नहीं बढ़े, वे अपने परम भक्त अत्रि के चरणों में ही झुक गये। कैसी अद्भुत लीला है रामजी

की। भक्त के चरणों में ईश्वरत्व ही समर्पित हो गया और भक्त ने अपने अन्तर की राशि राशि श्रद्धा आंसुओं के रूप में रामजी पर अर्पित कर दी।

करत दण्डवत मुनि उर लाए प्रेम बारि दाउ जन अन्हवाए
देखि राम छबि नयन जुड़ाने सादर निज आश्रम तब आने

महामुनि अत्रि ने देखा कि रामजी बन्धु सहित उनके ही चरणों में झुक गये तो उन्होंने दोनों भाइयों को उठा कर हृदय से लगा लिया और उनको अपने प्रेमाश्रुओं से नहला दिया। रामजी की अपूर्व छबि देख कर उनके नेत्र तृप्त हो गये और वे रामजी को अत्यन्त आदर के साथ अपने आश्रम में ले गये।

अत्रि मुनि भी कम चतुर नहीं थे। नित्य तो वे रामजी की काल्पनिक छवि को हृदय में धारण कर पूजते थे, लेकिन आज उन्हें प्रत्यक्ष ही पा गये। बिना जी भर निहारे और अपने हृदय की समस्त श्रद्धा अर्पित किए बिना उन्हें कैसे छोड़ते। इसीलिए उन्हें वे आश्रम के भीतर ले गये और पहले तो उनका पूजन कर रामजी की पसन्द के फल-मूल अर्पित किए, फिर जी भर उनकी रूप माधुरी का पान कर प्रवीणमुनि स्तुति करने लगे—

प्रभु-आसन आसीन भरिलोचन सोभा निरखि
मुनिवर परम प्रवीन जोरि पानि अस्तुति करत

प्रवीण महामुनि अत्रि ने पहले रामजी से मधुर-मधुर बात की, उनके आगे फलादि उपहार रक्खे। रामजी ने उन फलों की बहुत सराहना की। रामजी के मुख से अपनी सराहना सुन कर मुनि द्रवित होकर स्तुति करने लगे।

नमामि भक्तवत्सलं कृपालु सील कोमलं
भजामि ते पदाम्बुजं अकामिना स्व धामदं
निकाम स्याम सुंदरम् भवांबुनाथ मंदरम
प्रफुल्ल कंज लोंचनम् मदादि दोष मोतनम्

हे भक्त वत्सल भक्तों से प्यार करने वाले! कृपालु! कोमल स्वभाव वाले। मैं आपके चरणों की वंदना करता हूं। आप निष्काम पुरुषों को सदा अपने परम धाम को भेजते हैं। मैं भी आपके चरण कमलों

की वन्दना करता हूँ। आप अत्यन्त श्याम सुन्दर हैं। संसार रूपी समुद्र के लिए मन्दराचल हैं अर्थात आपकी शरण में रह कर संसारी लोग भव सिन्धु की कराल लहरों के थपेड़ों से बच जाते हैं। आपके नेत्र खिले हुए कमल के समान है। मद आदि दोष (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर) आप क्षण भर में मिटा देते हैं।

प्रलंब बाहु विक्रमं प्रभो प्रमेय वैभवं निषंग चाप सायकं धरं त्रिलोक नायकं
दिनेश वंश मण्डनं महेश चाप खंडनं मुनीन्द्र संत रंजनं सुरारि बृंद भंजनं

प्रभो ! आपकी लम्बी एवं विशाल भुजाओं का पराक्रम और आपका ऐश्वर्य समझ पाना किसी की भी बुद्धि के वश की बात नहीं है। आप अपने साथ तूणीर धनुष एवं बाण लिए रहते हैं। आप तीनों लोकों के स्वामी हैं। आप सूर्यकुल के भूषण हैं और आप ही हैं जो शंकर के चाप के खण्ड-खण्ड कर पाये हैं। आप सदा मुनीशों को सुख देते रहते हैं तथा देवताओं के शत्रुओं का नाश करते रहते हैं।

मनोज वैरि वंदितं अजादि देव सेवितं
विशुद्ध बोध विग्रहं समस्त दूषणापहं
नमामि इंदिरा पतिं सुखाकरं सतांगतिं
भजे सशक्ति सानुजं शचीपति प्रियानुजं

कामदेव के शत्रु शंकर सदा आपकी वंदना करते तथा ब्रह्मादि देवता सदा आपकी सेवा किया करते हैं। आप विशुद्ध ज्ञान की मूर्ति हैं तथा संसार के समस्त दोष आप नष्ट कर डालते हैं। हे लक्ष्मीपते ! सुखों के भण्डार ! हे सत्पुरूषों के एकमात्र आधार ! मैं आप और सीताजी को एक साथ नमन करता हूँ। हे शचीपति इन्द्र के छोटे भाई वामन ! मैं आपका भजन करता हूं।

त्वदंघ्रिमूल ये नराः भजंति हीन मत्सराः
पतंति नो भवाणं वे वितर्क वीचि सकुले
विविक्ति वासिन सदा भजंति मुक्तये मुदा
निरस्य इन्द्रियादिकं प्रयांति ते गतिं स्वकं

जो मनुष्य मत्सर रहित होकर आपके चरणों की सेवा करते रहते हैं वे तर्क-वितर्क की लहरों से भरे हुए इस संसार सागर में डूब नहीं पाते। जो

एकान्तवासी पुरुष सदा प्रसन्नतापूर्वक अपनी सब इंद्रिया अपने वश में करके मुक्ति पाने के लिए आपका भजन करते हैं वे ही आपके स्वरूप का दर्शन करने में समर्थ होते हैं।

तमेकमद्रभुतं प्रभुं निरीहमीश्वरं विभुं
जगदगुरूं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलं
भजामि भाव वल्लभं कुयोगिना सुदुर्लभं
स्वभक्त कल्प पादपं समं सुसेव्यमन्वहं

मैं उसी एक और अद्‌भुत प्रभु का भजन करता हूँ जो इच्छा रहित है, जो ईश्वर व्यापक, जगत का गुरु, नित्य (सनातन) तुरीय (तीनों गुणों से परें) और केवल (वही एक) है, जो केवल भाव का भूखा है तथा जो कुयोगियों (सकाम तपस्या करने वाले विषयी लोगों) को कभी मिल नहीं पाता, जो कल्पवृक्ष बन कर अपने भक्तों को सब कुछ दे डालता है, जो समदर्शी है तथा जिसकी सेवा करने से केवल सुख ही मिलता है, उसी का मैं भजन करता हूँ।

अनुप रूप भूपतिं नतो मुर्विजा पतिं
प्रसीद में नमामि ते पदाब्ज भक्ति देहि में
पठंति ये स्तवं इदं नरादरेण ते पदं
वृजंति नात्र संशया त्वदीय भक्ति संयुताः

हे अनुपम रूप वाले भूपति ! हे उर्विजापति (पृथ्वी से उत्पन्न सीता के पति) ! मैं आपको अत्यन्त भक्ति के साथ प्रणाम करता हूँ। अब आप ऐसा कीजिए कि आपके चरणों में मेरी भक्ति बढ़ती ही रहे। जो व्यक्ति आदरपूर्वक यह स्तुति पढ़ेगा वह आप की भक्ति पाकर आप परमपद प्राप्त कर लेगा, इसमें कोई संशय नहीं है।

इस स्तुति रूपी माला में महामुनि अत्रि ने अपनी सम्पूर्ण भक्ति भावना ही पिरो कर रख दी है। रामजी से हम भी महामुनि के स्वरों में प्रार्थना करते हैं कि हे नाथ अब ऐसा कीजिए कि मेरी बुद्धि सदा आपके चरण कमलों में लगी रहे।

चरन सरोरुहनाथ जनि कबहुं तजै मति मोरि

शिव पार्वती सम्वाद :
मानस की रचना का मूल

भगवान शंकर रामचरित के प्रथम एवं सबसे प्रवुद्ध गायक हैं और माता पार्वती भावुक श्रोता। रामजी की प्रत्येक लीला के वे अनुपम ज्ञाता हैं। राम जन्म के पूर्व ही उन्होंने समस्त रामजी का समस्त चरित्र एवं दिव्य लीलाएँ अपने मानस में संजोकर रख ली थी और समय पाकर पार्वती जी को सुनाया :—

रचि महेस निज मानस राखा पाइ सुसमय सिवा सन भाषा

भगवती पार्वती ने पूर्व जन्म में दक्ष प्रजापति के यहां 'सती' रूप में अवतार लिया था। रामजी के प्रति संदेह करने एवं सीताजी का भेष धारण करने के कारण शंकरजी ने उन्हें मानसिक रूप से त्याग दिया था। यक्ष यज्ञ में आत्म दाह करने के पश्चात वे पार्वती के रूप में हिमाचल के घट में अव-तरी थीं और घोर साधना करके शंकरजी को पुनः पतिरूप में प्राप्त किया था। पार्वतीजी एवं शंकर जी जगत के माता एवं पिता हैं। पार्वतीजी सान्सारिक जीव का प्रतीक हैं और शंकरजी जीवों को शाश्वत ज्ञान-संदेश देने वाले जगद्गुरु हैं। जीव को जब भी मोह वश संदेह होता है, सरल चित वाला विज्ञ गुरु उस संदेह का निवारण करता है। जीवात्मा सर्वदा अपने परम तत्व परमात्मा को जानने के लिए लालायित रहती है 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' ही जीव की शाश्वत जिज्ञासा है और है आत्म पिपासा। पार्वती जी की भी जिज्ञासा है 'अथातो राम जिज्ञासा'—

राम कवन पूछौ मैं तोही कहहु बुझाय कृपानि बिमोहि

बस पार्वती जी की यही जिज्ञासा राम चरित की रचना का मूल है।

एक बार भगवान शंकर कैलास पर्वत के रम्य शिखर पर शान्त भाव से विराजमान थे पार्वती जी ने सुअवसर जानकर शंकरजी से कहा—

विश्वनाथ मम नाथ पुरारी त्रिभुवन महिमा विदित तुम्हारी
चर अरु अचर नाग नर देवा सकल करहिं पद पंकज सेवा

हे संसार के स्वामी ! हे मेरे नाथ ! हे त्रिपुरासुर का वध करने वाले ! आपकी महिमा तो तीनों लोक जानते हैं। चर, अचर, नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके चरण कमलों की सेवा करते हैं।

पार्वती जी को ज्ञात था कि शंकरजी वैराग्य के मूल भण्डार है। उनका नाम शरणागतों के कल्प-वृक्ष के समान फल देने वाला है। उन्होंने शंकरजी से प्रार्थना की—

जो मो पर प्रसन्न सुख राखी जानिय सत्य मोहि निज दासी
तौ प्रभु मोर हरहु अग्याना कहि रघुनाथ कथा विधि नाना

यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे सचमुच अपनी दासी समझते हैं। तो हे प्रभु रामजी की बहुत सी कथायें सुनाकर मेरा अज्ञान दूर करने की कृपा करें।

पार्वतीजी जानती हैं कि राम कथा संशय को दूर करने में सर्व समर्थ हैं। अतः उन्होंने भगवान चन्द्रशेखर से पूछा—

प्रभु जे मुनि परमारथ वादी कहहिं राम कहं वल अनादि
सेस सारदा वेद पुराना सकल करहिं रघुपति गुनगाना
तुम पुनि राम राम दिन राती सादर जपहुं अनंग आराती
राम सो अवध नृपति सुत होई की अज अगुन अलख गति कोई

पार्ववतीजी की यह शंका जीवात्मा की शाश्वत शंका है. चिरंतन जिज्ञासा है। उन्होंने पूछा :—'हे प्रभो ! भ्रम यह है कि जो मुनि लोग परम तत्व का विवेचन किया करते हैं वे राम को अनादि ब्रह्म वतलाते हैं। यहाँ तक कि शेष शारदा, वेद और पुराण सभी रामजी के गुणों का वर्णन करते हुए अघाते नहीं हैं। हे कामदेव के शत्रु, मैं आपको भी देखती हूं कि आप भी दिन रात बहुत आदर पूर्वक बैठे बैठे राम राम ही जपते रहते हैं। इसलिए मैं जानना चाहती हूँ कि ये राम अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र ही हैं या अजन्मा, निर्गुण और अलक्ष्यजाति वाले, जिन्हें कोई समझ नहीं पाता ऐसे कोई दूसरे राम हैं।

पार्वती जी की शंका अनुचित नहीं है। कारण कि जो ब्रह्म है, निर्गुण है तो राजा के पुत्र कैसे हो सकते हैं। फिर स्त्री के वियोग में उनकी बुद्धि कैसे बिगड़ गई कि वे रोते कलपते वन-वन भटकते फिरते हैं और

यदि इच्छा रहित व्यापक और समर्थ ब्रह्म कोई दूसरा ही है तो नाथ! मुझे भलीभाँति समझा कर उसका पूरा परिचय दे डालिए।

जो अनीह व्यापक बिभु कोऊ कहहु बुझाई नाथ मोहि सोऊ

पार्वतीजी अपने मन का संदेश बिना किसी संकोच के प्रकट कर देती है।

अजहुं कछु संसय मन मोरे करहु कृपा बिननौ कर जोरे

मेरे मन में आज भी कुछ सन्देह रह गया है। मैं आपसे हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर रही हूं। मुझे राम की सम्पूर्ण कथा सुना डालिए। इसके वाद उस परम तत्व को भी कहिए जिस पर मुनिलोग चिन्तन करते हैं। पार्वती जी के मन में राम कथा सुनने की उद्याम उत्कण्ठा देख कर भगवान शंकर ने अपने हृदय में राम के दिव्य स्वरूप का चिन्तन करते हुए कहने लगे। उनके हृदय में राम के सारे चरित्र अपने आप कौंध गये। वे कहने लगे :—

झूठ अउ सत्य जाहि विनु जाने जिमि भुजंग बिनु रज पहिचाने
जेहि जाने जग जाइ हेरहि जागे जथा सपन भ्रम जाई
बन्दौ बाल रूप सोउ रामू सब सिधि सुलभ जपत जिस नामू

जिसके भली प्रकार जाने बिना झूठ भी वैसे ही सत्य प्रतीत होता है जैसे रस्सी को बिना पहिचाने उसे सांप समझ लिया जाय पर जिसे ठीक-ठीक जान लेने पर संसार का भ्रम उसी प्रकार लुप्त हो जाता है जैसे निद्रा से जाग उठने पर स्वप्न का भ्रम मिट जाता है। जीवन जवतक मोह रूपी निद्रा में सोता रहता है उसे यह मिथ्या भवजाल सत्य लगता है पर ज्ञान के नेत्र खुलने पर वह नष्ट हो जाता है। मैं उन्हीं राम के बाल रूप की वन्दना करता हूं जिनका नाम जपने से सारी सिद्धियाँ अपने आप हाथ में पहुंच जानी हैं।

मंगल भवन अमंगल हारी प्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी

सदा मंगल के भवन और अमंगलों को दूर करने वाले तथा महाराज दशरथ के आंगन में खेलने वाले बाल रूप वाले राम मुझ पर कृपा करें।

इस प्रकार रामजी को प्रणाम करके लोक कल्याण के लिये शंकरजी ने राम कथा कहनी प्रारम्भ की :—

राम कृपा तें पारबति सपनेहु तव मन माहिं
सोक मोह संदेह भ्रम मम विचार कछु नाहिं

देखो पार्वती ! मैं समझता हूँ कि रामजी कृपा से हमारे मन में स्वप्न में भी शोक, मोह, संदेह एवं भ्रम नहीं उठ पाते। राम कथा परम पावन है जिन्होंने अपने कानों से कभी भगवान की कथा नहीं सुनी उनके कानों के छेदों को साप के बिल समझना चाहिए। जिन्होंने अपने नेत्रों से संतों के दर्शन नहीं किये उनके नेत्र भी मोर के पंख पर बने बनावटी नेत्रों के समान है। वे सिर भी कड़वी तुम्बी के समान है जो भगवान एवं गुरु के चरणों में नहीं झुकते जिनके हृदय में रामजी की भक्ति नहीं है वे जीवित शव है। जो जीभ राम के गुणों को नहीं गाती वह मेढक की जीभ के समान है।

जिन्ह हरिकथा सुनी नहि काना श्रवन रन्ध्र अहि भवन समाना
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा लोचन मोर पंख कट लेखा
ते सिर कटु तुंवरि सम तूला जे न नमत हरि गुरु पद मूला
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी जीवत सव समान तेइ प्रानी
जो नहिं करै राम गुन गाना जीह सो दादुर जीह समाना

शंकरजी कहते हैं कि रामजी की कथा उस कामधेनु के समान है जिसकी सेवा करने से सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। राम कथा का अपूर्व महत्त्व है। यह संशय रूपी पक्षी को उड़ाने के लिए सुन्दर कटताली है।

राम कथा सुन्दर कर तारी संसय विहँग उड़ावन हारी
राम कथा कलि विरप कुठारी सादर सुनु गिरिराज कुमारी

राम की कथा कलियुग रूपी वृक्ष को काटने के लिए कुल्हाड़ी है। हे गिरिराज पुत्री ! सादर सुनो 'जिन राम का वर्णन वेदों में किया गया है और मुनिजन जिनका ध्यान धरते हैं वे कोई और राम नहीं है जो ऐसा कहते हैं वे अज्ञानी, मूर्ख, अभागे, मनरूपी दर्पण पर विषय की काई जमाए हुए लम्पट, छली और धोखेबाज हैं। राम का यथार्थ स्वरूप नहीं देख पाते हैं

जिनका मन रूपी दर्पण निर्मल हैं और ज्ञान के नेत्र विकसित हो गये हैं। हे पार्वतीजी ऐसा विचार कर संदेह छोड़ दो और राम के चरणों का भजन करो। देखो गिरिराज कुमारी! जैसे सूर्य की किरणें अन्धकार को मिटा डालती है वैसे ही मेरी ये बातें सुन लो, तुम्हारा समस्त भ्रम मिट जाएगा।

अस निज हृदय विचारि तजु संशय भजु राम पद
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रविकर बचन मम

इसके बाद पार्वतीजी का भ्रम मिटाने के लिए भगवान शंकर ने सगुण और निर्गुण ब्रह्म की अभेदता का प्रतिपादन करते हुए कहा—

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा
अगुन अरूप अलख अज जोई भगत प्रेम बस सगुन सो होई
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा तेहि किमि कहिय विमोह प्रसंगा

मुनि पुराण विद्वान और वेद सभी ने यही कहा है कि सगुण और निर्गुण ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। जो ब्रह्म निर्गुण निराकार अलक्ष्य और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेम के कारण सगुण होकर अवतार लेता है। जो निर्गुण है वह सगुण कैसे हो सकता है। इसका उत्तर यह है कि जैसे पानी और हिम [बरफ] में भेद नहीं है, पानी से ही बरफ बनता है और वही बरफ फिर पानी होकर अपने पहले रूप में आ जाता है। है दोनों एक ही, केवल उनके रूप में ही भेद दिखाई पड़ता है। जिसका नाम ही भ्रम के अन्धकार को वैसे मिटा देता है जैसे सूर्य! तब वहाँ मोह, रात्रि का क्या अस्तित्व है?

राम क्या हैं? यह रहस्य प्रकट करते हुए शंकरजी कहते हैं—

राम सच्चिदानन्द दिनेसा नहिं तहं मोह निसा लवलेसा
सहज प्रकाश रूप भगवाना नहिं तहं पुनि विज्ञान विहाना
हरष विषादज्ञान अज्ञाना जीव धरम अहमिति अभिमाना
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना परमानन्द परेस पुराना

रामजी तो सच्चिदानन्द स्वरूप सूर्य है, वहाँ तो मोह रूपी रात्रि का लेशमात्र भी अवशेष नहीं है। भगवान तो स्वभाव से ही प्रकाश रूप है—

इसलिए वहाँ विज्ञान का प्रभातकाल होता ही नहीं क्योंकि वहाँ तो सदा प्रकाश हुआ रहता है। अनन्त प्रकाश को इस कृत्रिम प्रकाश की आवश्यकता ही क्या है ? रामजी तो हर्ष, शोक ज्ञान अज्ञान जीव-धर्म अहंकार और गर्व से परे व्यापक ब्रह्म है—यह बात समस्त संसार जानता है। वे तो परमानन्द, परात्पर [बड़े से भी बड़े] प्रभु और पुराण पुरुष हैं।

ऐसे जो पुराण पुरुष के नाम से प्रसिद्ध हैं प्रकाश के निधान हैं। सब रूपों में प्रकट हैं, जो जीव माया और जगत के स्वामी हैं वही रघुवंशमणि राम मेरे स्वामी हैं—

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायउ माथ

भगवान शंकर ने अनेक शाश्वत तत्वों के द्वारा सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म की अभेदता को प्रतिपादित करते हुए रामजी को पूर्ण परात्पर निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म बताकर पार्वतीजी की शंका का समाधान किया।

शंकरजी ने पुनः अपने अराध्यदेव रामजी को शीश झुकाया और कहने लगे :—

निज भ्रम नहिं समुझत अज्ञानी प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी

अज्ञानी लोग अपना भ्रम तो समझते नहीं उल्टे वे मूर्ख प्रभु रामजी पर उस भ्रम का आरोप कर डालते हैं और कहने लगते हैं कि निर्गुण और सगुण एक कैसे हो सकते हैं। भगवान राम तो सबके परम प्रकाशक हैं। वे ही अयोध्यापति राम हैं—

सब कर परम प्रकासक जोई राम अनादि अवधपति सोई

भगवान राम तो जगत को प्रकाशित करने वाले परम प्रकाश हैं। वे प्रकाशक हैं और जगत प्रकाश्य। वे ही जगत की माया के स्वामी ज्ञान एवं गुण के आगार हैं।

भगवान शंकर के अनुसार यह समस्त विश्व भगवान पर ही आश्रित हैं। यद्यपि यह जगत झूठा है फिर भी दुःख देता है।

ऐहि बिधि जग हरि आस्रित रहई यदपि असत्य देत दुख अहई

हे गिरिजा ! जिसकी कृपा से यह समस्त भ्रम मिट जाता है वह केवल कृपालु रघुवीर ही हैं—

जासु कृपा अस भ्रम मिटिजाई गिरिजा सोई कृपालु रघुराई

यह निर्गुण ब्रह्म क्या है और कैसे समस्त कार्य कर लेता है यह सब बड़ा ही विचित्र है। जो अनादि है, अनन्त है, उसका वर्णन वेदों ने अनुमान से ही इस प्रकार किया है :—

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना कर बिनु करम करै बिधि नाना
आनन रहित सकल रस भोगी बिनु बानी बकता बड़ जोगी
तन बिनु परस नयन बिनु देखा ग्रहै घ्रान बिनु बास असेखा
असि सब भाँति अलौकिक करनी महिमा जासु जाइ नहिं बरनी

वह ब्रह्म बिना पैर के चल सकता है बिना कान के वह सुनता है, बिना हाथ के वह अनेक कार्य करता है, बिना मुँह [जीभ] के वह सभी रसों का आनन्द लेता है, बिना वाणी के वह बहुत वेग से बोल सकता है, बिना हाथ शरीर के स्पर्श करता है और बिना नेत्रों के भी देख सकता है वह बिना नासिका के सभी गंध ग्रहण करता है।

निर्गुण ब्रह्म वर्णनातीत है। वह बिना ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के भी परम चैतन्य स्वरूप हैं। सभी वेद और विद्वान लोग इस रूप में जिसका वर्णन करते हैं और मुनि लोग जिसका निरन्तर ध्यान करते हैं, वही तो दशरथ के पुत्र, भक्तों का हित करने वाले अयोध्या के स्वामी राम हैं—

जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान
सोई दशरथ सुत भगत हित कोसल पति भगवान

भगवान शंकर ने अपने प्रभु श्री राम जी की महिमा बतलाते हुए कहा कि जो विवश होकर या दबाव से भी रामजी का नाम लेते हैं उनके अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं और वे गो खुर के समान भवसागर को पार तर लेते हैं। भगवान शंकर के ये वाक्य सुनकर पार्वती जी का समस्त संशय दूर हो गया और रघुपति के चरणों में प्रेम एवं विश्वास उत्पन्न हो गया—

भई रघुपति पद प्रीति प्रतीती दारुन असंभावना बीती

इसके वाद पार्वतीजी ने अत्यन्त श्रद्धा से चिन्मय ज्ञान स्वरूप अविनाशी राम के अवतार के प्रयोजन को पूछा । भगवान शंकर ने अत्यन्त सार रूप में उन्हें वता दिया —

जब जब होई धरम के हानी बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी
तव तब प्रभु धरि विबिध सरीरा हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा
असुर मारि थापहिं सुरह राखहिं निज श्रुति . सेतु
जग विस्तारहिं विसद जस राम जन्म कर हेतु

हे पार्वती जी जव जव धर्म कम होने लगता है और नीच अभिमानी असुर बढ़ जाते हैं उनकी वे अपनी नीति या पापाचार से ब्राह्मण, गौ, देवता एवं धरती को इतना दुःख देते हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, तव-तव प्रभु रामजी अवतार लेकर साधु जनों का दुःख दूर करते हैं। वे अवतार लेकर असुरों [अत्याचारियों] का नाश करके देवताओं [सज्जनों] की चिन्ता दूर करते हैं। वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं और संसार में अपना विमल यश फैलाते हैं। वस रामजी के जन्म लेने का एक मात्र कारण यही है। उसी यश का वर्णन करके ही संसार के भक्त लोग भवसागर पार कर जाते हैं।

भगवान शंकर और माता पार्वती का यह सम्वाद सव भांति से अद्‌भुत है, अनुपम है और जीव का भ्रम हरने वाला है। पार्वतीजी का भ्रम जब दूर हो गया तभी भगवान शंकर ने रामायण की कथा सुनाई, कारण कि जब तक आँखों के सामने से भ्रम का पर्दा नहीं हटता तब तक सूर्य के दर्शन नहीं होते हैं। उमा-शम्भु संवाद ही रामायण का मूल है। पार्वती जी ने विश्व के मंगल के लिए ही यह प्रश्न किया और भगवान शंकर ने कहा— यह निभ्रान्त सत्य है कि यदि पार्वतीजी को मोह-संशय न होता तो रामायण की रचना नहीं हो पाती।

राम लक्ष्मण संवाद :

ज्ञान भक्ति वैराग्य एवं माया निरूपण

राम चरित मानस के अरण्यकाण्ड में वर्णित राम लक्ष्मण संवाद ज्ञान, भक्ति, वैराग्य एवं माया का एक अद्भुत एवं अनुपम चतुष्टय है। भगवान राम सीताजी एवं लक्ष्मणजी सहित पंचवटी में गोदावरी नदी के पावन तट पर एक सुन्दर सी पर्णकुटी बना कर रहने लगे थे। एक बार प्रभु रामजी निश्चिन्त हुए बैठे थे कि लक्ष्मणजी ने निश्छल होकर पूछा :—

सुर नर मुनि सचराचर साई मैं पूछौं निज प्रभु की नाई
मोहि समझाइ कहहु सोई देवा सब तजि करौं चरन रज सेवा
कहहु बिराग ग्यान अरु माया कहहु सो भगति करहु जेहि दाया
ईश्वर जींवहि भेद प्रभु सकल कहौं समुझाई
जाते होइ चरन रति सोक मोह, भ्रम जाइ

देवता, मनुष्य, मुनि और समस्त चराचर के स्वामी मैं आपको अपना स्वामी समझ कर ही आपसे पूछ रहा हूं। इसलिये हे देव! मुझे ऐसा कोई उपाय समझा दीजिये जिससे मैं सब कुछ त्याग कर निरन्तर आपके चरण रज की सेवा करता रहूं। इसी प्रसंग में आप ज्ञान, वैराग्य और माया का परिचय देते हुए अपनी उस भक्ति का परिचय भी दे डालिए जिसके कारण आप भक्तों पर निरंतर दया करते रहते हैं। हे प्रभो! आप ईश्वर एवं जीव का सारा भेद भली भांति समझा कर ऐसे बताइये जिससे आपके चरणों में मेरा प्रेम बना रहे और सारा शोक, मोह और भ्रम मिट जाये।

लक्ष्मण जी जीव के प्रतीक हैं और जीव जब तक शोक मोह एवं भ्रम से ग्रसित बना रहता है तब तक परम आराध्य के चरणों में अपनी प्रीति अविछिन्न नहीं बना पाता। रामजी परात्पर ब्रह्म हैं जीव लक्ष्मण की निश्छल एवं सहज जिज्ञासा जान कर उन्होंने सर्व प्रथम परम शक्तिमयी माया का निरूपण किया—

मैं अरु मोर तोर तैं माया जेहि बस कीन्हें जीव निकाया
गो-गो चर जहं लगि मन जाई सो सब माया जानेहु भाई

हे लक्ष्मण! मन लगाकर सुनो कि यह माया क्या है और कहां तक इसका साम्राज्य है देखो तात! बुद्धि, मन और चित को एकाग्र कर सुनते

चलो, यह मैं हूं, यह मेरा है, यह तू है और यह तेरा है यह भेद या अज्ञान का चक्कर ही माया है। जब सब कुछ मेरा और तेरा या स्व एवं पर का भेद क्यों होता है ? यही अज्ञान ही समस्त जगत को अपने चक्कर में डाले हुए हैं। इंद्रियों के जितने विषय है या इन्द्रियों से जिनका भोग किया जा सकता है और जहाँ तक मन पहुंचता है हमारी कल्पना पहुंच सकती है उन सब को तुम माया ही समझो।

रामजी के अतिरिक्त और कौन है जो माया का इतनी सीधी, सरल एवं अति संक्षिप्त व्याख्या करता। है भी तो वे माया पति। पर माया को ही जान लेने से जीव की मुक्ति नहीं होती, उसका भेद भी जानना होता है। रामजी ने संक्षेप में उसका भेद भी लक्ष्मण जी को समझा दिया।

तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ विधा अपर अविधा दोऊ
एक दुष्ट आतसय दुख रूपा जा वस जीव परा भव कूपा
एक रचै जन गुन वस जाके प्रभु प्रेरित नहि निज वल ताके
ग्यान मान जहं एकौ नाहीं ब्रह्म समान दीख सब माही
कहिय तात सो परम बिरागी तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी

देखो ! अब तुम इसके साथ-साथ माया का भेद भी समझते चलो। माया के दो रूप है-एक विधा और दूसरा अविधा। पहली अविधा तो बहुत ही दुख एवं कष्ट देती है जिसके वशीभूत होकर जीव संसार रूपी भव कूप में पड़ा रहता है। दूसरी सत्व, रज एवं तम विधा है जो प्रभु की ही प्रेरणा से जगत की रचना करती है। ज्ञान वह शक्ति है जिसके कारण मान आदि (मान, दम्भ, हिंसा, अक्षमशीतला, कुटिलता, आचार्य की सेवा न करना, अपवित्रता, अस्थिरता, मन का वश में न होना, इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु, जरा, व्याधिमय जगत में सुख मानते हुए रहना, स्त्री पुत्र घर आदि में आसक्ति, इच्छित वस्तु की प्राप्ति से हर्ष तथा अनिच्छित की प्राप्ति से शोक होना, भक्ति का अभाव, एकान्त में मन न लगना तथा विषयी मनुष्यों की संगति से प्रेम होना—गीता १३।७-११) को दोष नहीं आ पाते। ज्ञान प्राप्त कर लेने पर मनुष्य सबमें समान रूप से ब्रह्म का दर्शन करने लगता है। देखो वत्स ! सबको ब्रह्म ही समझने लगता है। परम विरागी उसीको समझना चाहिये जो सारी सिद्धियों एवं तीनों गुणों को तिनके के समान मान कर त्याग बैठा हो।

इतना कहने के पश्चात रामजी लक्ष्मण को जीव एवं ब्रह्म का भेद भी वतलाने लगे। उन्होंने कहा कि जो माया ईश्वर एवं अपने स्वरूप को नहीं

समझ पाता वह जीव है और जो कर्म के अनुसार सबको बन्धन एवं मोक्ष देता है सबसे अलग रहता है और माया को प्रेरणा देता रहता है वही ईश्वर है।

माया ईस न आप कहं जान कहिय सो जीव
बंध मोच्छप्रद सर्वं पर माया प्रेरक जीव

इसके बाद रामजी ज्ञान, वैराग्य एवं मोक्ष की चर्चा करते हुए कहते हैं।

धर्म तें विरति जोग तें ग्याना ग्यान मोच्छप्रद वेद बखाना

देखो तात ! धर्म का आचरण करने से वैराग्य होता है और योग का अभ्यास करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है। वेदों ने भी बताया है कि यही ज्ञान मोक्ष को प्राप्त कराता है।

लेकिन रामजी को तो भक्ति ही सर्वाधिक प्रिय है। भक्ति से ही वे द्रवित होते हैं अतः भक्ति की महिमा बतलाते हुए कहते हैं—

जाते वेगि द्रवहु मैं भाई सो मम भगति भगत सुखदाई
सो सुतंत्र अवलंब न आना तेहि आधीन ग्यान बिग्याना

हे तात ! मैं एक ही बात से प्रसन्न होता हूं और वह है भक्तों को सुख देने वाली मेरी भक्ति। जो मेरी भक्ति करने लगता है मैं उसी से प्रसन्न रहता हूँ। वह भक्ति पूर्ण स्वतंत्र है। उसे किसी दूसरे के अवलम्ब की आवश्यकता नहीं होती है। ज्ञान और विज्ञान सब भक्ति के ही अधीन है। भक्ति करने से ये सब अनायास मिल जाते हैं।

भगति तात अनुपम सुख मूला मिलह जो संत होई अनुकूला

इस भक्ति से ऐसा सुख मिलता है जिसकी कहीं भी कोई समानता नहीं है। लेकिन यह तभी प्राप्त होती है जब सन्त जन कृपा करते हैं।

इसके बाद रामजी ने विस्तार से भक्ति के साधनों का रहस्योंद्घाटन किया—

भगति के साधन कहौं बखानी सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी

यही एक ऐसा सुगम मार्ग है जिससे कोई भी प्राणी मुझे प्राप्त कर सकता है। तुम विस्तार से उसके साधनों को सुनो—

प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीति निज-निज कर्म निरत स्रुति रीति
यहि कर फल मन विषय बिरागा तब मम धर्म उपज अनुरागा

भक्ति जगाने का साधन यह है कि पहले तो ब्राह्मणों के चरणों में अत्यन्त प्रीति की जाय अर्थात श्रुति धर्म के जो ज्ञाता है उनसे भक्ति पूर्ण अनुराग हो और फिर वेदों में बताई हुई रीति के अनुसार अपना-अपना कर्म करते रहा जाय। इसका फल यह होगा कि मन विषयों से हट जाएगा और तब मेरे धर्म में प्रेम उत्पन्न हो जाएगा।

स्रवनादिक नव भगति दृढ़ाहीं मम लीला रति अति मन माही
संत चरन पंकज अति प्रेमा मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा सब मोहि कहं जाने दृढ़ सेवा
मम गुन गावत पुलक सरीरा गद्गद् गिरा नयन बह नीरा
काम आदि मद दम्भ न जाके तात निरंतर बस में ताके

इसके पश्चात श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन वन्दना, दासता सख्य एवं आत्म निवेदन नौ प्रकार की भक्ति दृढ़ हो जाएगी और मन में मेरी लीलाओं के प्रति सच्चा अनुराग उत्पन्न हो जाएगा। जो संतों के चरण कमलों में अत्यन्त प्रेम करता हो, मन, वाणी एवं कर्म से मेरा भजन करता हो और जो मुझे ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति एवं देवता समझ कर मेरी ही सेवा करता हो, मेरा गुण गाते-गाते इतना तन्मय हो जाता हो उसका शरीर पुलकित हो जाता हो, वाणी गद्गद हो जाती हो, नेत्रों से अन्तर का अनुराग अश्रु बन कर वह निकलता हो, जिसमें काम, मद, दम्भ आदि का नाम न हो, हे तात! मैं तो निरंतर उसी का बना रहता हूं। यही नहीं और भी सुनिये—

बचन कर्म मन मोरि गति भजन करहिंनि काम
तिन्ह के हृदय कमल महै करौ सदा विस्राम

जो मन वचन और कर्म से मुझे ही प्राप्त करने के फेर में पड़े रहते हैं और निष्काम भाव से मेरा ही भजन करते हैं उनके कमलवत हृदय में मैं सदा बैठा विश्राम किया करता हूं।

रामजी की वाणी सुन कर जीव रूपी लक्ष्मण गद्गद हो गये, यह लघु किन्तु अत्यन्त गूढ़ सम्वाद रामजी के चरण कमलों में भक्ति जगाने वाला है। रामजी ने लक्ष्मणजी के बहाने से ही यह अनुपम संदेश लोक को दिया।

शबरी की नवधा-भक्ति

आर्य ऋषियों द्वारा बतलाया गया भक्ति का मार्ग अति सरल भी है और दुर्गम भी है। जो मन, वचन, कर्म से शुद्ध एवं सरल होते हैं उनके लिये तो वह सरल होता है। गोस्वामीजी ने कहा भी है कि :—

सूधे मन सूधे वचन सूधी सब करतूति
तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति

राम के प्रेम को प्राप्त करने की सकल विधि अत्यन्त सरल है और वह यह है कि मन, वचन एवं सभी कर्म सरल हों। छल, छद्म, टेढ़ापन, भेद, दुराव, पापाचार, लोभ, मोह, क्रोध आदि विकारों से रहित जीवन का नाम ही सरलता है। सरल चित्त वाला निर्मल हृदय होता है और निर्मल हृदय में ही जगत निवास राम रमण करते हैं। उनकी घोषणा भी तो है।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा मोहि कपट छल छिद्र न भावा

परम भक्तिमती शबरी ऐसे ही सरल चित्तवाली नवधा भक्ति सम्पन्ना महानारी थी। वह पम्पासर के ही समीप अपना आश्रम बनाकर रहती थी। उसीके आस पास परम ब्रह्मनिष्ठ महात्मा मतंग का आश्रम था। महर्षि नित्य ब्रह्म बेला में अपने शिष्यों को पम्पासर के किनारे उपदेश देते थे। शबरी भी सघन लताओं की ओट से उनके अमृतमय उपदेशों को सुनती रहती थी। उसने मन ही मन महर्षि को अपना मार्ग-दर्शक गुरु स्वीकार कर लिया था, पर उसमें साहस नहीं था कि महर्षि के चरणों में अपनी प्रगति अर्पित कर सके। वह महर्षि के चरण-चिन्हों पर ही लोटने लगती थी मानों उसे अमूल्य निधि मिल गई हो।

शबरी ने पूर्व जन्म के संस्कारों एवं ऋषियों के सत्संग से समझ लिया था कि भगवान अपने भक्तों के लिये ही प्रकट होते हैं। अगर लगन सच्ची है तो वे दीन बन्धु अनाथ नाथ मुझ दीना एवं अनाथा को अवश्य ही दर्शन देंगे। यही सोच कर उसने संतों का संग करना ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा

वह एक प्रहर रात रहते उठ जाती और जिस मार्ग से मंतगादि ऋषि जाते उसे चुपचाप झाड़ू से साफ कर देती फिर वह जल से उस मार्ग को सींच कर पुष्प बिछा देती। ऋषिगण जब तक स्नान करते तव तक वह समस्त कार्य पूर्ण करके पम्पासार पहुंच जाती और किसी वृक्ष की ओट से भगवद् चर्चा सुनती।

दूसरि रति मम कथा प्रसंगा

शवरी की यही दैनिक चर्या थी। वह ऋषि मुनियों को अपना गुरु मान कर उनके लिये मार्ग को सुखदाई बनाती थी और उनके द्वारा कही गई भगवद् चर्चा को एकान्त में शुद्ध मन से दिन भर गुनती थी।

गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान

शवरी को दृढ़ विश्वास था कि यदि मैं अपने आराध्य को नित्य पुकारूंगी तो कभी न कभी उनके कानों तक मेरी आवाज पहुंचेगी। काम करते रहो, नाम जपते रहो। यही उसका विश्वास एवं उसकी साधना थी।

मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा पंचम भजन सो वेद प्रकासा

शबरी निम्न जाति की थी। मतंग मुनि के आश्रम के कुछ ऋषिगण उसका निरन्तर तिरस्कार करते थे, पर शवरी अपने सेवा-धर्म से कभी विमुख नहीं होती थी, वह दुर्व्यहार पाने पर भी सज्जन धर्म को नहीं छोड़ती थी।

छठ दम सील विरत वहु करमा निरत निरंतर सज्जन धरमा

महर्षि मतंग की कृपा से शवरी को ऐसी सिद्धि मिल गई थी कि वह अब कण-कण में आश्रम के प्रत्येक पेड़, पौधे एवं पुष्प पत्तियों में राम का दर्शन करने लगी थी। महर्षि तो उसके लिए साक्षात भगवान से भी अधिक पूज्य थे।

सातव सम मोहि मम जग देखा मोते अधिक संत कर लेखा

अपने प्रति ऋपियों के तिरस्कार को देख कर वह सोचा करती थी कि अवश्य ही मेरे पूर्व जन्म का कोई पाप है जो ऋपिगण मुझसे रुष्ट रहते हैं। उन महात्माओं का कोई दोष नहीं है। दोप मेरी सेवा में है इतना सब होने पर भी उसे जो उपलब्ध होता था उससे वह पूर्ण सन्तुष्ट थी।

आठव जथा लाभ सन्तोपा सपनेहुं नहिं देखइ पर दोसा

उस सरल हृदया पर महर्षि द्रवित हो गये। उन्होंने शबरी को आशीष दिया शबरी! तू चिन्ता न कर। तू सरल हृदया एवं छल-कपट विहीना है। राम को छोड़ कर तेरा अन्य कोई आश्रय नहीं है। तू जिनके लिए विकल है वे अवश्य ही तेरे द्वार पर आयेंगे।

शबरी के लिये अब राम नाम का ही सहारा रह गया था। वह दिन रात इसी कल्पना में आत्म-विभोर रहती थी कि मेरे परम पूज्य गुरुदेव की वाणी अवश्य सत्य होगी और दशरथ नन्दन मेरी कुटिया में अवश्य पधारेंगे। वह छल विहीना अब केवल राम के भरोसे ही जी रही थी—

नवम सरल सब सन छल हीना मम भरोस हिय हरष न दीना

महर्षि मतंग तो इस लोक से चले गये, पर शबरी को नवधा भक्ति से पूर्ण बना गये। वह दिन भर राम के आने की ही बाट जोहती थी। प्रति-दिन उनके लिए मार्ग साफ करती और एक पत्ता भी खड़खड़ाता तो वह पागल की भांति दौड़ती मानो राम के ही पदचाप से यह आवाज आई है। इतनी बड़ी साधना, इतना बड़ा विश्वास और इतनी बड़ी असीम आकुलता किसमें पाई गई है?

एक दिन सहसा शबरी के जीवन का दृश्य ही बदल गया, जब मर्यादा पुरुषोतम अवधनन्दन राम शबरी की छोटी सी कुटिया का पता पूछने लगे—शबरी की कुटिया कहां है? सभी ऋपिगण चकित थे। शबरी नित्य अपने आराध्य देव के स्वागत में वन-पुष्प एवं बेर लाकर रखती थी। उसने जब सुना कि उसके प्राणाधार कुटिया के द्वार पर खड़े होकर उसका पता पूछ रहे हैं तो फिर उसकी जो दशा हुई उसका वर्णन करने की क्षमता शेष और शारदा में भी नहीं है। महर्षि मतंग का वचन सत्य हो गया। द्वार पर दुख हर्ता राम खड़े थे। शबरी की वाणी रुद्ध हो गई, वह केवल जड़ बन कर उनकी छवि पगली बन कर निहारती रही—

शबरी देखि राम गृह आये मुनि के वचन समुझि जिय भाये
सरसिज लोचन बाहु बिसाला जटा मुकुट सिर उर बन माला
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई सबरी परी चरन लपटाई
प्रेम मगन मुख बचन न आवा पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा

उसे सब कुछ मिल गया। वाणी का काम ही अब क्या था? वह आत्म विभोर होकर चरणों पर लोट गई। उसका अब कुछ भी वश नहीं था। वह केवल सजल नेत्रों से उन्हें निहार रही थी और आंसुओं के अर्घ्य से उनके चरणों को पखार रही थी।

भगवान भी भक्ति की धारा में डूब गये। न वे बोलते थे न शबरी। अद्‌भुत स्थिति थी।

मेरे प्राणाधार! आपके लिये मैंने जंगल से एकत्र किए हुए वेर रखे हैं। बड़ी मुश्किल से शबरी इतना कह पाई। राम ने कहा :—लाओ और शबरी उठा लाई। राम तो वे सूखे वेर खाने लगे। उन्हें उन वेरों में इतना स्वाद आया मानों उनकी प्रेममयी माता ही भोजन खिला रही हो।

शबरी की युगों-युगों की साध पूरी हुई। उसने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। केहि विधि अस्तुति करो तुम्हारो, अधम जाति मैं जड़मति नारी। अधम ते अधम-वह इतना ही कह पाई थी कि राम ने उसे सावधान कर दिया।

सावधान सुनु भामिनि बाता मानों एक भगति कर नाता

भला शबरी ऐसी शुद्ध निर्मल प्रेम वाली सरल हृदया की दीनता वे कैसे सुनते। फिर तो शबरी को नवधा भक्ति का रहस्य बता कर उसमें उसकी पूर्णता भी बताई—

सकल प्रकार भगति दृढ़ तीरे

शबरी नवधा भक्ति से परिपूर्ण थी। यह सम्वाद अन्य ऋषि भी सुन रहे थे। वे मन ही मन पश्चाताप अवश्य करने लगे होंगे। शबरी को कृतार्थ कर भगवान चले गये।

शबरी की सी नवधा भक्ति, वैसी साधना, परमप्रियतम से मिलने की उद्याम उत्कंठा किसमें है? शबरी धन्य है, अनन्य है और कल्पान्त तक लोक वन्दना की अधिकारिणी बनी रहेगी। भक्तिमयी भारतीय नारी का शुद्ध रूप हमें शबरी में ही मिलता है।

वाल्मीकि-राम-संवाद

रामजी बड़े कृपालु हैं। इसके साथ-साथ वे सरल चित्त भी हैं। उन्हें न तो छल-कपट भाता है और न लोभ मोहादि विकार ही। जो मन-क्रम-वचन से सरल है रामजी उसी के मानस मंदिर में अपना निवास बनाते हैं। फिर वे मर्यादा पुरुषोत्तम भी हैं। धर्म, कर्म आदि की मर्यादाओं का उलंघन भी उन्हें अच्छा नहीं लगता। अभिमानी तो उन्हें रती भर नहीं सोहाता है। अभिमान के तो वे इतने बड़े शत्रु हैं कि अपने भक्तों तक के अभिमान को दूर कर देते हैं।

ऐसे कृपालु करुणायतन सर्व सुलभ रामजी जिसकी आत्मा में नहीं रमते हैं वह जीवित शव हैं और जिसकी आत्मा में रमण करते हैं वह उनसे भी अधिक पूज्य बन जाता है।

राम ते अधिक राम कर दासा

गोस्वामी तुलसी दास ने लंकाकाण्ड में अंगद के मुँह से चौदह हत-भागों को बतलाया है। ये १४ प्राणी जीवित शव हैं और ब्रह्मज्ञानी बाल्मीकि के मुँह से रामजी के निवास के योग्य चौदह भवन भी कहे हैं। अद्‌भुत साम्य हैं किन्तु सत्य ही है कि रामजी चौदह स्थलों में ही रहते हैं। फिर भुवन भी तो चौदह ही हैं। रामजी 'चौदह भुवन एक पति होइ' हैं। फिर उन्हें चौदह वर्ष का वनवास भी मिला है। इन चौदह स्थलों में ही राम रहते हैं और जहाँ नहीं रहते हैं वे प्राणी जीवित लाशें नहीं तो और क्या है ? अंगद रावण से कहते हैं —

'कौल कामबस कृपनि विमूढ़ा अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा
सदा रोग बस संतत क्रोधी विष्नु विमुख सुति संत बिरोधी
तनु पोषक निंदक अघ खानी जीवत सव सम चौदह प्रानी

वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यन्त मूढ़, अति दरिद्र, अपयशी (बदनाम), अति वृद्ध, सदा रोगी रहने वाला, सदा संतों का विरोध करने वाला केवल अपने ही शरीर का पोषणकरने वाला, पर निन्दक और महान पापी—ये चौदह प्राणी तो जीते जी मरे हुए के समान है।

रामजी तो ऐसे प्राणियों से सर्वदा दूर ही रहते हैं। वे तो शुद्ध अंतः-करण में ही रमते हैं। शुद्ध परात्पर ब्रह्म अशुद्ध मानस में रम ही नहीं सकता।

महर्षि बाल्मीकि पचेता ऋषि एवं राम काव्य के उत्कृष्ट गायक हैं। रामजी के नाम के प्रभाव को उनसे अधिक और कौन जान सकता है? राम जी का उल्टा नाम जप कर ही वे ब्रह्म के समान हो गये।

उलटा नाम जपत जग जाना बाल्मीकि भे ब्रह्म समाना

ऐसे परम ब्रह्मनिष्ठ महात्मा आदि के आश्रम में जब जानकी जी एवं लखनजी सहित रामजी पधारते हैं तो महर्षि के हर्ष की सीमा नहीं रहती है। बाल्मीकि जी से रामजी का कोई भेद अनजाना नहीं है। वे जानते हैं कि रामजी शुद्ध परात्पर ब्रह्म हैं।

रामसरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर अबिगत अकश अपार नेति
नेति निगम कह ।।

आपका स्वरूप न तो वाणी से बताया जा सकना है और न बुद्धि से ही समझा जा सकता है। आप अव्यक्त (कभी वास्तविक रूप में प्रकट नहीं होते) हैं, अकथ है (आपका वर्णन नहीं किया जा सकता) और अपार है। वेद भी आपको नेति-नेति (इतना ही नहीं है) कह कर चुप हो जाते हैं।

पर महर्षि यह भी जानते हैं कि उन्होंने मानव शरीर क्यों कर धारण किया है? वे कहते हैं:—

नर तन धरेउ संत सुर काजा कहहु करहु जस प्रकृति राजा

आपने तो संतों एवं देवों के कार्य के लिए ही मानव शरीर धारण किया है और साधारण राजाओं की भांति बातचीत और व्यवहार कर रहे हैं।

रामजी भी बड़े भोलेपन से बाल्मीकि जी से अपने रहने का स्थान पूछते हैं।

अस जिय जानिकहिय सोइ ठांऊँ सिय सौमित्र सहित जंह जाऊँ

हे महर्षि! आप मुझे कोई ऐसा स्थान बता दीजिए जहाँ मैं घास-पात की सुन्दर कुटिया बना कर सीता और लक्ष्मण के साथ कुछ दिनों तक रह सकूँ।

रामजी की सरल एवं छल विहीन वाणी सुनकर बाल्मीकि उन्हे 'साधु-साधु कह कर मुस्करा उठे। उन्हें संकोच भी हुआ कि आप मुझसे अपने रहने का स्थान पूछते हैं और मुझे आपसे पूछते हुए झिझक हो रही है कि पहले आप मुझे वह स्थान बता दीजिए जहां आप न हों—

पूछेउ मोहि कि रहौ कहं मैं पूछत सकुचाऊं जहं न होहु तंह देहु
कहि तुम्हहिं दिखावऊं ठाऊं

मैं आपको निश्चित रूप से वह स्थान बता दूंगा पहले आप यह तो बताइये कि आप कहाँ नहीं हैं। लेकिन यदि आप मुझसे पूछना ही चाहते हैं कि आप कहां रहें तो मैं स्थान वे स्थान बताए देता हूँ जहां आप सीताजी एवं लक्ष्मण जी के साथ निवास कर सकते हैं।

सुनहु राम अब कहहुं निकेता जहाँ बसहु सिय लखन समेता

रामजी रहने योग्य चौदह स्थान है अर्थात रामजी जिन चौदह हृदय मन्दिरों में रहते हैं उनमें प्रथम मानस-मन्दिर वह है।

जिनके श्रवन समुद्र समाना कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे तिन्हके हिय तुम कहं गृह रूरे

जिनके काम ऐसे सागर के समान है जिनमें आपकी कथाओं की अनेक सुन्दर नदियाँ आ-आकर पड़ती है और जिनके निरंतर आ-आकर पड़ने से भी कान का समूद्र कभी भरता नहीं है अर्थात आपकी चाहे जितनी कथा सुने पर तृप्त न हों और अधिक सुनने की लालसा सर्वदा बनी रहे ऐसे महा-भागों के हृदय ही आपके रहने योग्य सुन्दर निवास स्थान है। आप ऐसे लोगों के हृदय में बसिये जो निरन्तर आपकी पावन कथा सुनते रहते हैं।

रामजी के रहने योग्य दूसरा निवास स्थान बतलाते हुए बाल्मीकिजी कहते हैं—

लोचन चातक जिन्ह करि राखे रहहिं दरस जलधर अभिलाखे
निद रहि सरित सिन्धु सर भारी रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक बसहु बंधु सिय सह रघुनायक

जिन्होंने अपने नेत्रों को ऐसा चातक बना लिया है जो आपके दर्शन रूपी मेघ के लिए सदा लालायित रहते हैं और बड़ी-बड़ी नदियां, समुद्रों और झीलों को तुच्छ समझते हैं तथा आपके सौन्दर्य की झलक की एक बूंद पाकर ही मगन हो जाते हैं। उनके ही हृदय के सुखदायी भवन में आप सीताजी एवं लक्ष्मण जी सहित जाकर रहिये।

अब बाल्मीकि जी रामजी के रहने के लिए तीसरा स्थान बतलाते हैं।

जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हिय तासु

आपके यह निर्मल मान सरोवर में जिनकी जीभ सदा हंसिनी बनी आपके गुणों के मोती चुगती रहती है अर्थात जो सदा आपके यश का ही वर्णन किया करते हैं बस राम आप उन्हीं के हृदय में जाकर बसिये।

अब रामजी के लिये चौथा सदन कौन है यह महर्षि बतलाते हैं।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुवासा सादर जासु लहइ नित नासा
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी प्रीति सहित करि विनय विसेखी
कर नित करहिं राम पद पूजा राम भरोस हृदय नहीं दूजा
चरन राम तीरथ चलि जाही राम बसहुं तिन्ह के मन माही

रामजी के लिए चौथे कर्ममय सदन का संकेत करते हुए वाल्मीकिजी कहते हैं कि जो आपके पवित्र एवं सुगन्धित प्रसाद (तुलसी, पुष्प आदि) को सादर सहित अपनी नासिका से सूंघते हैं आपको अर्पण करके ही भोजन करते हैं और आपके उतारे हुए वस्त्राभूषण प्रसाद के रूप में धारण करते हैं, देवता गुरु ब्राह्मण को देखते ही विनम्रता से सिर नवाते हैं जो अपने ही हाथ से राम के चरणों की नित्य पूजा करते हैं जिनके हृदह में राम को छोड़ कर और किसी का भरोसा नहीं है, जो पैरों से चलकर रामतीर्थों अयोध्या, चित्रकूट, पंचवटी, रामेश्वर आदि जा पहुंचते हैं वस राम ! आप उनके हृदय में प्रेम से जाकर निवास कीजिए।

चौथे निवास स्थान के पश्चात पांचवां आचरण धाम बतलाते हुए महर्षि कहते हैं।

मन्त्रराज नित जपहिं तुम्हारा पूजहिं तुमहहिं सहित परिवारा
तरपन होम करहिं विधि नाना विप्र जेवांर देहिं बहु दाना

तुम ते अधिक गुर्हहि जिय जानी सकल माय सेवहिं सनमानी
सब करि मांगहिं एकु फल राम चरन रति होउ
तिन्ह के मन मन्दिर बसहु सिय रघुनन्दन दोउ

जो नित्य आपका मंत्रराज (राम नाम) जपा करते हैं और परिवार सहित आपकी पूजा किया करते हैं, जो अनेक प्रकार के तर्पण और हवन करते हैं तथा ब्राह्मणों को भोजन करा कर दान देते हैं, जो आपसे भी अधिक गुरु को हृदय में विराजमान जानकर सब प्रकार से सम्मान पूर्वक उनकी सेवा करते हैं और जो इतने सब कर्म करके भी सबका एक ही फल माँगते हैं कि राम के चरणों में हमारी प्रीति हो, उनके मन मन्दिर में हे राम ! आप दोनों भाई सीताजी के साथ निवास कीजिए।

रामजी के लिए छठा स्थान बतलाते हुए बाल्मीकि जी कहते हैं—

काम कोह मद मान न मोहा लोभ न छोभ न राग न द्रोहा
जिनके कपट दम्भ नहिं माया तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया

हे रघुनाथ ! जिनके मन में काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह का नाम न हो और जिनके मन में न लोभ हो न क्षोभ (व्याकुलता) हो न राग हो न द्वेष हो न कपट हो, न दम्भ हो न माया हो, आप उनके हृदय में आनन्द पूर्वक अपना निवास बनाइये।

अब महर्षि बाल्मीकि सातवां निवास स्थान इस प्रकार बतलाते हैं—

सबके प्रिय सबके हितकारी दुःख सुख सरिस प्रशंसा गारी
कहहिं सत्य प्रिय बचन विचारी जागत सोवत सरन तुम्हारी
तुम्हहिं छाड़ि गति दूसरि नाहीं राम बसहु तिनके मन माही

हे राम ! आपको यदि अपना निवास स्थान ही बनाना है तो आप उनके मन मन्दिर में बसिये, जो सभी प्राणियों को प्रिय हो और सर्वदा सबके उपकार में लगे रहते हों। जो दुःख सुख प्रशंसा और गाली सब को एक समान समझते हो जो सदा बहुत सोच विचार कर प्रिय एवं सत्य वचन ही बोलते हैं। जो जागते सोते केवल आपकी ही शरण में रहते हों आप वहीं रहिये जिन्हें आपको छोड़ कर दूसरा कोई सहारा नहीं है।

आठवाँ स्थान रामजी के लिये मन महा भाग्यशालियों का उन-मन्दिर होता है जो—

जननी सम जानहिं पर नारी धन पराव विष ते विष भारी
जे हरषहिं पर सम्पति देखी दुखित होहिं पर विपति विसेखी
जिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे तिनके मन तुम सदन तुम्हारे

जो साधु पुरुष पराई स्त्री को माता के समान मानते हैं, दूसरे के धन को विष से भी अधिक विषाक्त समझते हैं जो दूसरे की उन्नति [सम्पत्ति] देख कर प्रसन्न होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर बहुत दुःखी होते हैं तथा जो आपको प्राणों के समान प्यार करते हैं। उनके मन में ही आपके रहने योग्य सुन्दर भवन है। उनके मन में निवास करने में आपको बहुत आनन्द मिलेगा।

रामजी के लिए नौवाँ स्थान कौन हो सकता उसे वाल्मीकि बतलाते हैं।

स्वामी सखा पितु मातु गुरु जिनके तुम सब तान
मन मन्दिर तिनके बसहु सीय सहित दोउ भ्रात

हे रामजी जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता, गुरु सब कुछ आपही हैं, उनके मन रूपी मन्दिर में सीता के साथ आप दोनों भाई जाकर भलीभांति निवास कर सकते हैं।

रामजी के लिए दसवां स्थान कौन सा उपयुक्त है, वह वाल्मीकि जी बतलाते हैं —

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं विप्र धेनु हित संकट सहहीं
नीति निपुन जिन्ह कह जग लीका घर तुम्हार तिन्ह कर मन नीका

जो किसी के अवगुणों पर ध्यान न देकर सबके गुण ही देखते हैं जो ब्राह्मण एवं गौ की रक्षा और सेवा में हर प्रकार का संकट सहने को तैयार रहते हैं तथा जो नीति के अनुसार कार्य करने में संसार में प्रसिद्ध है उनके सुन्दर मन मन्दिर में आप चाहें तो भली प्रकार जाकर बस सकते हैं।

रामजी के लिए ग्यारहवां निवास स्थान कौन है यह वाल्मीकि जी बतलाते हैं।

गुन तुम्हारा समुझई निज दोसा जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा
राम भगत प्रिय लागहिं जेही तेहि उर बसहु सहित वैदेही

जो आपके गुणों एवं अपने दोषों को भलिभांति जानता समझता हो, जिसे सब प्रकार से केवल आपका ही भरोसा हो, जिसे राम के भक्त सर्वदा प्रिय लगते हों, उसके मन मन्दिर में आप जानकी जी के साथ निवास कीजिए।

रामजी के निवास करने योग्य बारहवां स्थान महर्षि जी इस प्रकार बतलाते हैं।

जाति पांति धन धरम बड़ाई प्रिय परिवार सदन सुखदाई
सब तजि तुम्हहिं रहइ उर लाई तेहि के हृदय रहहु रघुराई

जाति पांति, धन, धर्म, लोक, यश प्यारा परिवार एवं सुख देने वाला घर छोड़कर केवल आपको ही हृदय में बैठाये रहता हो उसके मन मन्दिर में हे रघुनाथ आप जाकर रह सकते हैं।

अब रामजी के लिए तेरहवां स्थान उसीका मन मन्दिर हो सकता है जो कण-कण में रामजी के ही स्वरूप का दर्शन करता हो बाल्मीकि जी कहते हैं।

सरग नरक आप बरग समाना जहं तहं देख धरे धनु बाना
करम बचन मन राउर चेरा राम करहु तेहि के उर डेरा

स्वर्ग नरक और मोक्ष को जो समान समझता हो, जो यही देखता हो कि चारों ओर सर्वत्र आप ही धनुष बाण लिए खड़े हैं तथा जो मन, वचन एवं कर्म से केवल आपका ही दास हो, हे राम ! उसी के हृदय में आप जाकर अपना डेरा जमाइये।

अब बाल्मीकि जी अन्तिम एवं चौदहवां भवन बतलाते हैं—

जाहि न चाहिय कबहुं कछु तुम सब सहज सनेह
बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेह

जिसके मन में कभी किसी वस्तु की चाह नहीं रहती हो और केवल आप से ही स्वाभाविक स्नेह करता हो आप उसके मानस-मन्दिर में निरंतर निवास करिये क्योंकि वही आपका प्रिय गेह है।

इस प्रकार मुनिवर बाल्मीकि ने लोक मंगल के लिए रामजी को वे सब स्थान बता डाले जहाँ रामजी को रहना चाहिये। यह सम्वाद जीवन को चरम लक्ष्य की ओर ले जाने का एक स्वर्गिक सोपान है। रामजी उसी के मानस मन्दिर में रहते हैं जो रामजी को ही अपना सर्वस्व समझता हो उन्हीं के लिए जीता हो और उन्हीं को अपना सर्वस्व अर्पण कर चुका हो। महर्षि बाल्मीकि ने लोक जीवन को भक्ति की धारा से आप्लावित करने के लिए ही रामजी के चौदहों निवास लोकों की चर्चा की। धन्य है बाल्मीकि महर्षि और धन्य हैं उनका यह सम्वाद जो अनन्तकाल तक भक्ति की धारा बहाता रहेगा।

भक्त और भगवान का सम्बन्ध

रामजी के भक्तों में देवर्षि नारद का अत्यन्त उच्च स्थान है। नारद जी भगवान के सुयश एवं लीलाओं के सबसे बड़े गायक हैं। रामजी का नाम तो उनका हृदय हार ही है। और रामजी भी कितने कृपालु तथा भक्तों का हठ रखने वाले हैं यह उनके रामावतार से ही भलीभांति स्पष्ट हो जाता है। नारदजी को एक बार रामजी की माया ने इतना भरमाया कि वे माया-रूपिणी विश्वमोहनी से विवाह करने को उतावले हो गये और रामजी से उनके समान ही सुन्दरता मांगने गये। पर रामजी तो अपने भक्तों की सर्वदा रक्षा करते हैं। उन्होंने नारदजी का मुख बन्दर के समान बना दिया और स्वयं माया रूपिणी विश्वमोहिनी से विवाह कर लिया।

रामजी की माया से त्रस्त नारदजी ने रामजी को मनुष्य के रूप में जन्म लेने तथा अपने ही समान पत्नी की विरह में व्याकुल रहने का शाप दे दिया। रामजी ने भक्त की यह जिद भी पूरी की। रामजी को चौदह वर्ष का बनवास मिला और वन में सीताजी को रावण ने हर लिया। मानव चरित्र करने वाले रामजी विरह में व्याकुल हो गये। उन्हें प्रकरत नर के समान व्याकुल हुआ देख कर नारदजी को बड़ा दुःख हुआ कि मेरे शाप को अंगीकार करके रामजी वन-वन में घूम रहे हैं। मुझे ऐसे प्रभु का दर्शन अवश्य करना चाहिये।

यह बिचारि नारद कर बीना गये जहां प्रभु सुख आसीना
गावत राम चरित मृदुबानी प्रेम सहित बहु भांति बखानी

यह विचार कर नारदजी हाथ में वीणा लिये वहां गये जहां प्रभु राम जी आराम से एक पेड़ की छाया तले आसीन थे। नारदजी बड़ी ही मधुर-वाणी में प्रेम से रामजी चरित्र का गायन करते हुए गये और उनके चरणों में शीश नवा कर श्रद्धा अर्पित की। रामजी ने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ नारद जी को हृदय से लगा लिया कारण कि भक्त तो सर्वदा उनके हृदय में ही निवास करते हैं। रामजी को अत्यन्त प्रसन्न जान कर नारदजी बोले :—

देहु एक बर मांगों स्वामी जद्यपि जानत अन्तरयामी

हे स्वामी ! मैं आपसे केवल एक वर मांगता हूं। उसे आप देने की कृपा करें। आप तो अन्तर्यामी हैं इसलिये जानते ही हैं कि मैं क्या

चाहता हूं। नारदजी की सरल एवं स्नेह सुधा वाणी सुन कर रामजी ने कहा कि हे नारद ! तुम तो मेरा स्वभाव जानते ही हो कि मैं अपने भक्त से कोई दुराव नहीं करता हूं फिर ऐसी कौन सी प्रिय वस्तु है जो तुम मांग नहीं सकते हो ?

जानहु मुनि तुम मोर सुभाऊ जन सब कवहुं कि करौं दुराऊं
कवन वस्तु असि प्रिय मोहि लागी जो मुनिवर न सकहु तुम माँगी

ऐसी कोई वस्तु मेरे पास नहीं है जो भक्त को अदेय हो। रामजी की उत्तम वाणी सुन कर नारद जी प्रसन्नतापूर्वक बोले :—

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका सुति कह अधिक एकते एका
राम सकल नामन ते अधिका होउ नाश अब खग गन बधिका

राम नाम का माहात्म्य कहते हुए नारदजी बोले :—यद्यपि वेदों में आपके एक से बढ़ कर एक नाम गिनाये गये हैं, पर उन सबों में राम नाम ही सर्वश्रेष्ठ है और हे नाथ ! वह नाम ऐसा है कि पाप को ऐसे समाप्त कर डालता है जैसे पक्षियों को बहेलिया मार डालता है। इसके बाद नारदजी ने वरदान मांगते हुए निवेदन किया—

राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम
अपर नाम उडुगन बिमल बसहु भगत उर व्योम

हे स्वामी ! आपकी भक्ति ही पूर्णिमा है और उस पूर्णिमा की रात में 'राम' नाम ही चन्द्रमा तथा आपके अन्य सभी नाम तारे बन कर भक्तों के हृदय के निर्मल आकाश में सदा छिटके रहें। आपका 'राम' नाम तथा अन्य नाम भक्त लोग निरन्तर अपने मन में रटते रहें।

नारद जी ने जो वरदान मांगा वह न केवल अपने लिये बल्कि सभी प्राणियों के लिये है। नारद जी रामजी के कितने बड़े भक्त हैं कि वे जन-जन में राम भक्ति का प्रचार भी चाहते हैं और नारदजी का ही इस मनोकामना का प्रभाव है कि हमारी समस्त उपासना एवं संस्कृति राम मय बन गई है।

नारदजी की यह महती एवं अलौकिक कामना जान कर रामजी ने एवमस्तु कह दिया। तब रामजी को अत्यन्त प्रसन्न जान कर नारदजी ने फिर पूछा :—

राम जबहिं प्रेरेहु निज माया मोहेहु मोहिं सुनहुँ रघुराया
तब बिबाह मैं चाहेउं कीन्हां प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा

हे राम ! मुझे आज ही यह बता दीजिये कि आपने अपनी माया को प्रेरित कर मुझे भ्रमित कर दिया था। मैं तो विश्वमोहिनी के साथ विवाह करना चाहता था पर मेरे नाथ ! आज आप बताइये कि किस कारण आपने मुझे करने नहीं दिया।

नारदजी का सहज प्रश्न सुन कर भक्त वत्सल रामजी ने अपना स्वभाव बता दिया :—

सुनु मुनि तोहिं कहां सहरोसा भजहिं जे मोहिं तजि सकल भरोसा
करौ सदा तिन्ह कै रखवारी जिमि बालक राखै महतारी
यह सिसु वच्छ अनल अहि धाई तहै राखै जननी अरगाई
प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता प्रीति करै नहि पाछिली बाता
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी बालक सुत सम दास अमानी
जिन्हहिं मोर बल निज बल ताही दुंदु कहं काम क्रोध रिपु आही
यह विचारि पंडित मोहि भजहीं पासेउ ग्यान भगति नहिं तजहीं
काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह के धारि
तिन्ह महं अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि

रामजी का स्वभाव कैसा है और वे अपने भक्तों का प्रतिपल कितना ध्यान रखते हैं यह सब वे स्वयं प्रकट कर रहे हैं। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कहा—देखो मुनि ! मैं हर्ष के साथ बता रहा हूं कि जो व्यक्ति सबका भरोसा छोड़ कर केवल मेरा ही पल्ला थामे रहता है उसकी मैं सर्वदा वैसे ही रख वाली करता हूँ जैसे माता अपने बालक की रक्षा किया करती है। जिस प्रकार बालक को अपनी कुशल क्षेम के लिये चिन्तित नहीं रहना पड़ता है, यह यह सब कार्य तो वात्सल्यमयी माता का है, बस नारदजी मुझे भी वैसा समझो। छोटा बच्चा आग या सर्प को पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाता है, माता उसे झपट कर खींच लेती है। मैं क्या करूं यह तो मेरा स्वभाव है। लेकिन जब वही बालक बड़ा हो जाता है तो माता उसकी रक्षा के लिये उतनी चिन्तित नहीं रहती। बस इसी भांति ज्ञानी जन है जो मेरे सयाने पुत्र की भांति है और अपने बल पर भरोसा न करने वाला भक्त शिशु के समान है। भक्त को मेरा भरोसा रहता है और ज्ञानी को अपना। फिर भी काम और

क्रोध तो दोनों के शत्रु हैं। ऐसा समझ कर पण्डित जन ज्ञान प्राप्त हो जाने पर भी मुझे नहीं छोड़ते। यों तो काम, क्रोध, लोभ, मद आदि ही प्रबल सेना वाले बली हैं, पर उनमें तो स्त्री और दारुण दुःख देती है। उसे माया का ही दूसरा रूप समझो।

रामजी अपने भक्तों की कितनी सतर्कता एवं तन्मयता से रक्षा करते हैं। ऐसा कृपालु दूसरा और कौन देवता है? वे नारदजी को फिर समझाते हैं—

सुनु मुनि! कह पुरान सुति संता मोह बिपिन कईं नारि बसन्ता
जप तप नेप जलासय भारी होइ ग्रीपम सोखै सब नारी
काम क्रोध मद मत्सर भेका इन्हहिं हरष प्रद वरषा एका
दूरबासना कुमुद समुदाई तिन्ह कहं सरद सदा सुखदाई

देखो मुनि वेद-पुराण एवं सन्त जनों के बचन हैं कि मोह रूपी वन के लिये स्त्री साक्षात वसन्त ऋतु है। जैसे बसन्त में वन फूल उठते हैं वैसे ही स्त्री के आते ही मोह बढ़ जाता है। यह स्त्री ग्रीष्म ऋतु बन कर जप तप और नियम के जलाशयों को सोख लेती है जैसे ग्रीष्म के ताप से सेरोवरों में जल नहीं रह पाता वैसे ही स्त्री के आने से जप तप नियमादि कुछ नहीं हो पाते। जहां स्त्री रूपी वर्षा ऋतु आती है वहीं काम क्रोध मद मत्सरादि रूपी मेढ़क हर्षित होते हैं। बुरी वासनाओं को ऐसा कुमद समझना चाहिये जिन्हें खिलाए रखने के लिये स्त्री शरद ऋतु के समान होती है।

रामजी ने नारदजी को इसीलिये नारी की संगति से दूर रखा कारण कि नारी धर्माचरण में उसी भांति नष्ट कर देती है जिस प्रकार कमल वन को हेमन्त ऋतु! वह ममता रूपी जवा को पालने के लिये शिशिर ऋतु के समान हैं। वह पाप रूपी उल्लुओं को हर्षित करने वाली काली अंधेरी निशा के समान होती है। बुद्धि, वल, शील एवं सत्य की मछलियों को फंसाने वाली वंसी के समान होती है। रामजो कहते हैं कि यह सभी विद्वान कहते हैं—

अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि
तातें कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि

यह स्त्री क्या है सारे अवगुणों की जड़ है। सदा शूल ही शूल (कांटे) उत्पन्न करती है। इसीलिये हे मुनि! मैंने भली भांति जान बूझ कर ही आपको उससे बचाए रखा और आपका विवाह नहीं होने दिया।

रामजी की यह प्रिय बात सुन कर नारद पुलकित हो उठे। उनकी आंखें डबडबा आईं। वे कहने लगे कि संसार में ऐसा कौन दूसरा स्वामी होगा जो अपने सेवक से इतनी ममता और प्रीति रखता हो।

कहहु कवन प्रभु के असि रीति सेवक पर ममता अरु प्रीति

ऐसे प्रभु को भ्रमवश जो नहीं भजते हैं वे ज्ञान में रंक एवं अभागे ही हैं। उन्होंने रामजी से ऐसे संतों के लक्षण पूछे जो रामजी को प्रिय हो। रामजी ने बताया—

सुनु मुनि सन्तन के गुन कहउं जिन्ह ते मैं उनके बस रहउं

हे मुनि ! सन्तों के उन लक्षणों को सुनो जिनके कारण मैं सर्वदा उनके वश में रहता हूं।

षट् विकार जित अनघ अकामा
अचल आकिंचन सुचि सुख धामा
अमित अनीह बोध मित भोगी
सत्य सार कवि कोविद जोगी
सावधान मानद मद हीना
धीर धरम गति परम प्रवीना
गुनागार संसार दुख रहित विगत सन्देह
तजि मन चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहं देह न गेह

हे नारदजी ! सन्त वे हैं जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः विकारों में जीत चुके हैं जिनके मन में न पाप होता है न कोई कामना होती है, जिनके विचार दृढ़ होते हैं, जो अपने पास कुछ नहीं रखते, जो पवित्र, सुखी, अत्यन्त इच्छाहीन बहुत ज्ञानवान, संयम से सांसारिक भोग भोगने वाले, सबसे सच्चा व्यवहार करने वाले, कवि (विचारक एवं चिंतक) विद्वान, योगी, सावधान, दूसरों का आदर करने वाले, अभिमान रहित, धैर्यवान, सदा धर्म का आचरण करने में कुशल, गुणों से भरे हुए, सांसारिक दुःख जिन्हें स्पर्श तक नहीं कर पाते, जिनके मन में कोई सन्देह नहीं होता जिन्हें मेरे चरण कमलों को छोड़ कर अपनी देह एवं घर भी अच्छा नहीं लगता।

निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं पर गुन सुनत अधिक हरषाही
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीति सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीति
जप तप व्रत दम संजम नेमा गुरू गोविन्द विप्र पद प्रेमा
श्रद्धा छमा मइत्री दाया मुदिता मम पद प्रीति अमाया

जिन्हें अपने गुण सुनने में लाज लगती है, संकोच होता है, जो दूसरों के गुण सुन कर प्रसन्न हो उठते हैं, सो सदासम (न दुःख में दुखी और न सुख में सुखी) और शीतल (निश्चिन्त) बने रहते हैं, जो न्याय का त्याग कभी नहीं करते, जो सरल स्वभाव वाले और सबसे प्रेम करने वाले होते हैं, जो जप, तप, व्रत, दम, संयम नियम में लगे रहते हैं, जो गुरु, गोविन्द और ब्राह्मणों के चरणों में प्रीति करते हैं, जिनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री और दया का भाव भरा रहता है, जो सर्वदा प्रसन्न चित्त एवं मेरे चरणों में निष्काम प्रीति रखते हैं।

बिरति बिवेक बिनय बिग्याना बोध जथारथ वेद पुराना
दंभ मान मद करहिं न काऊ भूलि न देहिं कुमारग पाऊ
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला हेतु रहित परहित रत सीला
मुनि सुनु साधुन के गुन जेते कहि न सकैं सारद श्रुति तेते

जो वैराग्य, विवेक, विनय और विज्ञान के भाण्डार है जिन्हें वेद और पुराणों का ठीक-ठीक ज्ञान रहता है जो किसी के सम्मुख दम्भ, मान एवं मद का प्रदर्शन नहीं करते और कुमार्ग में भूल कर भी पैर नहीं रखते, जो सदा मेरी लीलाएं कहते और सुनते रहते हैं और विना कारण ही दूसरों की भलाई में लगे रहते हैं। हे मुनि! ध्यान से सुनिये सन्तजनों में इतने गुण है कि सरस्वती और वेद भी उनका वर्णण नहीं कर सकते। रामजी के मुख से इन वचनों को कि सन्तों के लक्षण वेद और सरस्वती भी नहीं कर सकते सुनते ही नारदजी ने रामजी के चरण कमलों को पकड़ लिया।

नारदजी कहने लगे कि ऐसा दीनबन्धु एवं कृपालु और कौन हो सकता जो अपने मुख से सन्तों के इतने गुण बता जाय।

श्री रामजी कितने कृपालु हैं। उन्होंने संसार में साधुता के प्रचार लिये ही यह सब कहा। वे लोग धन्य हैं जो इन गुणों को अपना कर रामजी के ही रंग में रम गये हैं।

राम हनुमान संवाद :
ब्रह्म एवं जीव का मिलन

यह समस्त जगत माया से आच्छादित है। समस्त जड़ चेतन उसी माया के वशीभूत है। जीव भी माया के वशीभूत होकर अपने शाश्वत लक्ष्य को भूल कर भ्रमित रहता है और परम सता को पहचान नहीं पाता है। वह उसे तभी प्राप्त कर सकता है जब उस सता की कृपा होती है। वह उसकी कृपा से ही उसके रहस्य को जान पाता है।

सोइ जानइ जेहि देउ जनाई जानत तुम्हहिं होइ जाई

और जान लेने के बाद जीव भी ब्रह्मवत हो जाता है। राम चरित मानस के किष्किन्धाकाण्ड में वर्णित राम-हनुमान संवाद इसी रहस्य को प्रकट करता है। हनुमान जी जगत जीव के प्रतीक है और राम साक्षात ब्रह्म। ब्रह्म के सम्मुख पहुँच कर भी जीव उसे ब्रह्म की माया वश पहचान नहीं पाता है। यह स्वयं हनुमानजी प्रकट करते हैं—

तव माया वस फिरौं भुलाना तातें मैं नहिं प्रभु पहिचाना

माया के वशीभूत जीव शंकाओं से भी ग्रस्त होता है। ब्रह्म को सामने पाकर भी वह शंका प्रकट करता है कि मेरे सामने जो अलौकिक छवि दीख पड़ रही है वह ब्रह्म है या अन्य कोई। हनुमानजी भी ऐसा कहते हैं।

वे ब्रह्म राम के सम्मुख पहुंचते हैं विप्र वेश में। यह भी एक रहस्य है। जीव का स्वरूप जब निर्मल हो जाता है तब वह ब्रह्म के दर्शन का सुयोग पाता है। जीव शरीर तो निर्मल हो गया। पर जब तक माया का पर्दा नहीं हटता है तब तक ब्रह्म का परिचय नहीं प्राप्त कर सकता है।

सीताजी का हरण हो गया था। रामजी सबन्धु सीताजी के अन्वेपण में किष्किन्धा पुरी की ओर आते हैं। ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव हनुमानजी के साथ बैठे हैं। दोनों बंधुओं को देख कर उन्हें आशंका होती है कि हो न हो बाली ने मेरे वध के लिए भेजा हो। वह हनुमानजी को भेजता है और वे विप्र वेष में रामजी के सम्मुख आते हैं और शीश झुका कर प्रश्न करते हैं—

को तुम स्यामल गोर शरीरा छत्री रूप फिरहु बन बीरा
कठिन भूमि कोमल पद गामी कवन हेतु विचरहु बन स्वामी
मुदुल मनोहर सुन्दर गाता सहत दुसह बन आतप वाता

हनुमानजी अभी माया से पूर्ण ग्रस्त हैं। वे उसी के प्रभाव से वैसा ही प्रश्न करते हैं कि वीरो ! आप दोनों सांवले और गोरे कौन हैं जो क्षत्रिय का बाना बना कर वन में घूम फिर रहे हैं ? स्वामी ! इस वन की कठोर भूमि में आप अपने कोमल चरण लेकर क्यों भटक रहे हैं ? आप इतने कोमल मनोहर सुन्दर होकर भी वन की भयंकर धूप और लू क्यों झेल रहे हैं ?

अभी हनुमानजी को शरीर धर्म विस्मृत नहीं हुआ है। इसीलिए वे रामजी के शारीरिक सौन्दर्य की ही चर्चा कर रहे हैं। लेकिन रामजी का प्रभाव भी तो अलौकिक है, उनके दर्शन मात्र से ही माया का सघन पर्दा स्वतः हटने लगता है। जब माया का कुछ तम दूर हुआ तो उनकी जो दृष्टि वहिर्मुखी थी अब अन्तर्मुखी होने लगी और वे रामजी के स्वरूप में शनैः शनैः अलौकिता के दर्शन करने लगे।

की तुम तीनि देव मंह कोऊ नर नारायण की तुम दोऊ

आप लोग ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश (त्रिदेव) में कोई हैं या साक्षात नर-नारायण ही आ उतरे हैं।

इसके बाद जब वे और गहरे उतरते हैं तो आशंका प्रकट करते हैं कि हो न हो आप साक्षात जगत पालक एवं उद्धारक हैं। वे कहते हैं—

जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार की
तुम अखिल भुवन पतिली—हमनुज अवतार

मुझे तो ऐसा लग रहा है कि कहीं आप इस समस्त जगत के कारण इसे उत्पन्न करने वाले तथा सम्पूर्ण लोकों के स्वामी हैं या आप स्वयं भगवान ही हैं जो लोगों को संसार सागर से पार उतारने तथा पृथ्वी का बोझ उतारने के लिए मनुष्य रूप में अवतरित हुए हैं।

रामजी भी कम कौतुकी नहीं है। वे स्वयं अपना असली परिचय न देकर केवल मानवी परिचय देते हैं और अपना असली परिचय तो भक्त के मुख से कहलाना चाहते हैं। कहते हैं—

कोसलेस दसरथ के जाए हम पितु वचन मानि बन आए
नाम लछिमन दोउ भाई संग नारि सुकुमारि सुहाई
इहां हरी निसिचर बैदेही बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही

भाई ! हम तो कौशलेश महाराज दशरथ के पुत्र हैं और पिता की अमज्ञा से ही वन में आए हैं। मेरा नाम राम और ये छोटे भाई लक्ष्मण है। हमारे साथ एक सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी जिसे वन में राक्षस उठा ले गये। हे विप्र हम उसीको खोजते फिरते हैं।

रामजी ने एकदम सीधा-सादा उत्तर दिया, पर अब तो हनुमानजी की दृष्टि के सम्मुख माया का पर्दा हट चुका था। वे अपने प्रभु को पहचान कर चरणों में सीधे गिर पड़े। उनके मुख से एक शब्द भी न निकला। वाणी रुद्ध हो गई और एकटक उसी दिव्य झांकी को निहारते रहे।

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना सो सुख उमा जाइ नहिं बरना
पुलकित तन मुख आव न बचना देखत रुचिर वेष के रचना

हनुमानजी की अद्‌भुत दशा देख कर भगवान शंकर पुलकित होकर पार्वतीजी से कहते हैं हे पार्वती ! अपने प्रभु को पहचान कर हनुमानजी चरणों में गिर पड़े। उन्हें उस क्षण कितना सुख प्राप्त हुआ। उसका वर्णन मैं तो नहीं कर सकता। हनुमानजी का शरीर पुलकित हुआ जा रहा था। उनके मुँह से बचन नहीं निकल पा रहे थे। वे टकटकी बांधे प्रभु को केवल निहार रहे थे।

फिर बहुत धीरज धर कर स्तुति करने लगे और अपने स्वामी को पहचान पाने उनके हृदय में अपार हर्ष की लहरें तरंगित हो उठी। वे कहने लगे—

मोर न्याउ मैं पूछा साईं तुम पूछहु कस नर की नाईं
तब माया बस फिरौ भुलाना ताते मैं नहि प्रभु पहिचाना

स्वामी ! मेरा आपसे इस प्रकार पूछना तो ठीक था क्योंकि में बहरा माया वश पर आप सर्वज्ञ होकर मनुष्य की भांति कैसे पूछे जा रहे हैं। मैं तो आपकी माया के वश से भ्रमित था, इसलिये आपको पहचाना नहीं। पर आप तो सचमुच विचित्र हैं। पहले माया से भुलवाया फिर मनुष्य की भांति उत्तर देने लगे—

एक मैं भेद मोह बस कुटिल हृदय अज्ञान
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीन बंधु भगवान

एक तो मैं मति का मंद मोह के वशीभूत फिर कुटिल हृदय वाला उस पर आप भी भुला बैठे। अब आप ही बतलाइये कि आपको जब मैं पहचान नहीं सका तो मेरा क्या दोष है ? हनुमानजी का तर्क बुद्धिमता पूर्ण भी है और सत्य भी। भक्त ने उल्टे भगवान को दोषी बना दिया। वह यदि पहचान नहीं पाया तो इसमें भी भगवान का दोष है। क्योंकि माया तो उन्हीं के अधीन है और माया ही ब्रह्म एवं जीव के मध्य एक पर्दा बन कर खड़ी रहती है।

हनुमानजी की भक्ति परिपूर्णतक है। भक्त भगवान के सामने अपने दोषों को प्रकट करता है। कुछ छिपाता नहीं है।

जदपि नाथ बहु अवगुण मोरे। सेवक प्रभुहि परैं जनि भोरे
नाथ जीव तव माया मोहा सो निस्तरैं तुम्हारेहि छोहा

नाथ मैं मानता हूं कि मुझ में अवगुण ही अवगुण भरे पड़े हैं पर स्वामी तो अपने सेवक को कभी भूल नहीं पाते। नाथ ! यह जीव भी आपकी माया के फेर में पड़ कर भटकता है और जब आपकी कृपा होती है तभी उससे मुक्त होता है।

कितना सशक्त दार्शनिक सिद्धान्त है। हनुमानजी अपनी दीनता दिखाते हुये आगे कहते हैं—

तापर मैं रघुबीरा दोहाई जानो नहिं कछु भजन उपाई
सेवक पति सुत मातु भरोसे रहै असोच बनै प्रभु पोसे

हे मेरे नाथ ! मैं आपकी दुहाई देकर सत्य पूर्वक कहता हूँ कि मैं भजन वजन कुछ भी नहीं जानता हूं। क्योंकि सेवक तो अपने स्वामी के भरोसे और पुत्र अपनी माता के भरोसे निश्चित होकर घूमता है। सेवक का पोषण तो प्रभु को करना ही पड़ता है।

फिर रामजी ने भी तो एक स्थल पर कहा है कि मेरे जिन दासों को दूसरा सहारा नहीं रहता केवल मेरे सहारे हैं, मैं उनकी उसी भांति रखवाली करता हूँ जिस प्रकार एक शिशु की रक्षा माता करती है।

करौं सदा तिन्ह कै रखवारी जिमि बालक राखहिं महतारी

अब रामजी चुप हो गये। बाजी हनुमान जी के हाथ लग गई। यह देख कर हनुमानजी उनके चरणों में गिर पड़े। रामजी ने उन्हें उठा कर हृदय से लगा कर कहा :—

सम दरसी मोहि कह सब कोऊ सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ

हे हनुमान यद्यपि सब मुझे समदर्शी कहते हैं पर सच पूछो तो मैं अपने सेवक को जी जान से प्यार करता हूँ क्योंकि उसे मुझे छोड़ कर दूसरे का सहारा भी तो नहीं रहता है।

इस अद्भुत संवाद के बहाने भगवान राम अपने सच्चे भक्त की पहचान भी बता देते हैं कि हे हनुमान! मेरा सच्चा अनन्य भक्त वही है जो सदा यही समझता रहे कि मैं तो इस समस्त चराचर जगत के रूप वाले भगवान का ही सेवक हूँ।

सो अनन्य जाके असि मत न टरइ हनुमंत
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामी भगवंत

बस इस सम्वाद का यही सार है। यही भक्ति का सिद्धान्त है और है मोक्ष का साधन द्वार।

बाली-राम सम्वाद

भक्ति की दृष्टि से राम चरित मानस में वर्णित बाली-राम सम्वाद का अपूर्व महत्त्व है। इस सम्वाद के माध्यम से गोस्वामी जी ने भक्त एवं भगवान का अद्‌भुत तर्क प्रस्तुत किया है। देवराज इन्द्र के अंश से उत्पन्न बानर राज बाली अत्यन्त पराक्रमी थे। वे परम भगवद् भक्त थे। पराक्रमी तो इतने थे कि त्रिभुवन विजेता रावण को भी एक नन्हें बच्चे की भांति अपनी काँख में छ महीने तक दवाए रखा लेकिन महर्षि पुलस्त्य के कहने पर उन्होंने उसे छोड़ दिया था। उन्होंने महर्षि पुलस्त्य की आज्ञा का उलंघन नहीं किया। इससे यह सिद्ध होता है कि बाली ऋषि मुनियों का पूर्ण समादर करते थे।

वे भगवद् भक्त ऐसे विलक्षण थे कि यह जानते हुए कि भगवान राम सुग्रीव के पक्ष में हैं फिर भी उनकी समदर्शिता पर बाली को पूर्ण विश्वास था। पत्नी तारा के समझाने पर बाली उत्तर देते हैं—

कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ
जौं कदापि मोहि मारि हैं तो पुन होऊं सनाथ

बाली समझाते हैं—'अरी डरपोक प्रिये! तू इतनी घवड़ाई क्यों है? देख! राम तो समदर्शी हैं। वे किसी को अपना पराया नहीं समझते हैं। यदि वे मुझे मार भी देंगे तो भी समझो मैं सनाथ हो गया, मैं परमपद पा जाऊँगा।

यह है एक भक्त की शुद्ध भावना और अपने आराध्य देव के प्रति अखण्ड विश्वास। बाली श्री राम के स्वरूप को जानते थे। जब प्रभु राम ने उनकी छाती में वाण मारा और वे गिर पड़े, तब जगत नियन्ता उनके सम्मुख आये।

परा विकल महिं सर के लागे पुनि उठि बैठ देख प्रभु आगे
स्याम गात सिर जटा बनाए अरुन नयन सर चाप चढ़ाए
पुनि पुनि चितै चरण चित दीन्हाँ सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा

वाण का लगना था कि बाली लड़खड़ा कर धरती पर जा पड़ा। किन्तु जब उसने प्रभु राम को अपने आगे खड़ा देखा तो संभलकर उठ बैठा। वह

देखता क्या है कि श्याम शरीर वाले सिर पर जटा बांधे, लाल-लाल नेत्रों वाले, धनुष पर वाण चढ़ाये राम सामने आये हैं। प्रभु की ओर टकटकी लगाये हुए उसने अपना चित उनके चरणों में बाँध दिया। प्रभु को पहचान कर कि वे साक्षात परमेश्वर हैं, उसने समझ लिया कि मेरा जन्म अब तो सफल हो गया।

उसके हृदय में भक्ति की मंदाकिनी तरंगित थी पर उसे छिपाते हुए उसने राम को उलाहना दिया। उसकी अन्तर्भावना का चित्रण करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा बोला चितैं राम की ओरा

हृदय में तो अपार प्रीति है पर ऊपर से वह कठोर बचनों में बोलता है—

धरम हेतु अब तेरहु गोसाईं मारेहु मोहि व्याध की नाईं
मैं बैरी सुग्रीव पियारा कारन कवन नाथ मोहि मारा

आपका अवतार तो धर्म की रक्षा के लिए हुआ है और मुझे मारना हुआ तो आपने ऐसे छिपकर मारा जैसे कोई बहेलिया किसी पशु को छिपकर मारता है। मैं तो आपका बैरी बन गया और सुग्रीव आप का प्रिय बन गया। बताइये मैंने आपका ऐसा क्या बिगाड़ा था कि आपने इस प्रकार मुझे मार डाला।

भक्त की वाणी सुनकर भगवान ने लोक कल्याण एवं समाज में मर्यादा की रक्षा के लिए उत्तर दिया—

अनुज वधू भगिनि सुत नारी सुनु सठ ये कन्या सम चारी
इन्हहि कुदृष्टि विलोकइ जोई ताहि वधे कछु पाप न होई
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना नारि सिखावन करसि न वाना
मम भुज बल आस्रित तेहि जानी मारा चहसि अधम अभिमानी

अरे मूर्ख ! छोटे भाई की स्त्री, बहन, पुत्र वधू और कन्या ये चारों बराबर है। जो इन पर कुदृष्टि डालता है उसका वध करने में कोई पाप नहीं है। तुझे इतना अभिमान हो गया कि तू ने अपनी दूरदर्शिनी पत्नी

की बात भी नहीं मानी। तुझे पता था कि सुग्रीव मेरे आश्रित है तब भी उसे मारना चाहा।

इस सम्वाद के बहाने यह रहस्य प्रकट होता है कि भगवान के आश्रय में जो होता है उसका कोई भी बिगाड़ नहीं सकता है।

इस पर बाली ने अत्यन्त आर्द्र होकर उत्तर दिया—

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि
प्रभु आजहुं मैं पातकी अंतकाल गति तोरि

स्वामी आपसे तो मेरी चालाकी चल नहीं पाएगी। पर प्रभो! आज इस क्षण जब मैं आपके शरण में हूं तब भी क्या पापी हूं?

बाली का तर्क कम गम्भीर नहीं है श्री बाली को पता है कि रामकी शरण में जाकर कोई पापी नहीं रह सकता। पर वह राम के मुख से उत्तर चाहता है। बाली की प्रेम भरी वाणी सुनकर भगवान ने उसके सिर पर अपना करुण कर फेरते हुए कहा कि यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हें अमर कर सकता हूं।

अचल करौ तनु राखहु प्राना

इस पर बाली ने कहा—

जनम-जनम मुनि जतन कराही अन्त राम कहि आवत नाहीं
जासु राम बल संकर कासी देत सबहिं सम गति अबिनासी
सो मम लोचन गोचर आवा बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा

इस पर बाली ने कहा कि कृपानिधान! मुनि लोग न जाने कितने जन्मों तक यत्न करते-करते हार बैठते हैं फिर भी अन्त समय में उनके मुख से 'राम' शब्द नहीं निकलता है। जिसके नाम के बल पर शंकर भगवान काशी में सबको अविनाशी गति (मोक्ष) देते हैं वही राम मेरे लोचनों के सम्मुख स्वयं आ गया है। तब आप ही कहें कि क्या ऐसा सुअवसर फिर कभी हाथ लग सकता है?

कितनी गूढ़ भक्ति एवं ज्ञान का संदेश है बाली की उद्भावना में। इतना नही बाली आगे कहता है—वेद जिसे नेति-नेति कहते हैं मुनिलोग इन्द्रियों को

पवन को जीतकर बड़ी कठिनाई से योग द्वारा जिसका चिन्तन करते हैं वह तो आज मेरे सामने आ गया है। प्रभु ने मुझे अभिमान वश जान कर ही अमर कर देने का प्रस्ताव रखा है। बस मैं तो आपसे केवल यही वरदान मांगता हूँ—

जेहि जोनि जनमौं करम वस तहं राम पद अनुरागऊँ

मुझ पर कृपा करके अब यही वरदान दीजिए कि कर्म वश मैं चाहे जिस योनि में जन्म लूँ मुझमें आपके चरणों में निरंतर अनुराग बना रहे—

अब नाथ करि करुना विलोकहु देहु जो वर माँगऊँ
जेहि जोनि जनमौं करम वस तहं राम पद अनुरागऊँ

भगवद्चरणों में उत्कृष्ट भक्ति का इससे अधिक भावपूर्ण उदाहरण कहाँ मिलेगा ? राम के चरणों में अपनी प्रीति सुदृढ़ करके बालि ने अपने प्राण उसी प्रकार त्याग दिये जिस भाँति एक हाथी के गले से फूलों की माला गिर जाती है और उसे जान भी नहीं पड़ता है।

राम चरन दृढ़ प्रीति करि वालिकीन्ह तनु त्याग
सुमन माल जिमि कण्ठ ते गिरत न जानै नाग

और फिर भगवान ने भी भक्त को अपने परम धाम में स्थान दिया—

राम बलि निज धाम पठावा

राम वाली सम्वाद के प्रत्येक वाक्य में भक्ति की माधुरी का मंगलमय सुवास है। राम बाली सम्वाद के प्रत्येक वाक्य के प्रत्येक शब्द एवं प्रत्येक अक्षर में ज्ञान-वैराग्य एवं भक्ति की गंगा तरंगित हो रही है जिसमें अवगाहन करके भक्त जन अपने को धन्य एवं अनन्य बनाते है।

रावण - मन्दोदरी संवाद :
राम के विराट रूप का वर्णन

लंकापति रावण की पटमहिषी मन्दोदरी परम विदुषी लोक विख्यात पतिव्रता एवं रामजी की अनन्य भक्त थी। हम आज भी पंचकन्याओं के साथ मन्दोदरी का सादर स्मरण करते हैं। वह निरंतर अपने पति के कल्याण में चिन्तित रहती थी। रामजी जब सैन्य सहित लंका पर चढ़ आये थे वे सुवेल पर्वत पर अपना डेरा जमाये हुए थे। एक रात्रि को उन्होंने अपने बाणों से रावण के छत्र मुकुट एवं मन्दोदरी के ताटण्क उस समय काट कर गिरा दिये थे, जब लंकापति रावण चित्रकूट पर्वत पर रागरंग में लीन था। मन्दोदरी एक सहृदया एवं भावुक महानारी थी। उस घटना से वह बेचैन हो गई। उसने सोचा कि यह तो घोर अपशकुन है। ताटण्क तो सुहाग के चिन्ह हैं। अवश्य ही मेरे पतिदेव कालवश रामजी की महिमा को जानकर भी अनजान बनें हैं। मुझे अपने पतिदेव के मंगल के लिए रामजी के विराट स्वरूप को बता देना चाहिए। यह सोचकर अश्रुपूर्ण नयनों से हाथ जोड़कर रावण से कहने लगी—

राम विरोध कंत परि हरहूँ जानि मनुज जनि हठ मन धरहूं

हे स्वामी ! हे प्राणनाथ ! अब भी मेरी प्रार्थना मानकर रामजी से विरोध करना छोड़ दीजिए। उन्हें साधारण मनुष्य समझ कर हठ न करिये। फिर उसने रामजी के विराट स्वरूप का वर्णन किया जो उसके गम्भीर ज्ञान एवं भक्ति भाव को प्रकट करता है—

विश्वरूप रघुवंश मनि करहु बचन बिस्वास
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु

यह सारा विश्व उन्हीं रघुवंश मणि रामजी का ही रूप है। मेरी यह बात आप एकदम पक्की समझिए। उनके लिए वेद कल्पना करते हैं कि उनके एक-एक अंग में न जाने कितने लोकों का वास है।

पद पाताल सीस अज धामा अपर लोक अंग-अंग बिस्रामा
भृकुटि बिलास भयंकर काला नयन दिवाकर कच घन माला

वेदों में कहा गया है कि पाताल ही उनके चरण है, ब्रह्म लोक ही उनके अंग अंग में भरे पड़े हैं। वे जिधर भृकुटि घुमा दे उधर ही महाकाल नर्तन करने लगे। सूर्य उनके नेत्र और बादल ही केश हैं।

जासु घ्रान अस्विनी कुमारा निसि अरु दिवस निमेष अपारा
स्रवन दिसा दस वेद बखानी मारुत स्वास निगम निज बानी

रामजी ऐसे विराट हैं कि उनकी घ्राणेण्द्रिय नासिका ही अश्विनी कुमार है, उनकी पलकों का गिरना एवं उठना ही रात और दिन है, दशों दिशाएं उनके कान हैं, वायु उनका स्वास है और वेद ही उनकी वाणी है।

अधर लोभ जम दसन कराला माया हास बाहु दिग पाला
आनन अनल अम्बुपति जीहा उतपति पालन प्रलय समीहा

उनके होठ ही लोभ है, यम उनके कराल दाँत है, माया उनकी हंसी है और दिग्पाल उनकी विशाल भुजाएं है, अग्नि उनका मुख और वरुण उनकी जीभ है, उत्पत्ति, पालन और प्रलय उनकी इच्छा है।

रोम रोम अष्टदास भारा अस्थि सैल सरिता नस जारा
उदधि उदर अध गो जातमा जगमय प्रभु का बहु कलपना

अठारह प्रकार के धान्य (जौ, गेहूं, धान, तिल, कंगुनी, कुलथी, उड़द, मूंग, मसूर, बाकला, सांवा, सरसों, गवेधुका, तिन्नी, औढक्य, केराव, चना और चीना) ही उनकी रोमावलि है, पर्वत ही उनकी हड्डियाँ है, नदियां ही नसें हैं, समुद्र ही पेट है, नरक ही नीचे की इंद्रियाँ है। इस प्रकार विश्व रूप वाले प्रभु की अनेक कल्पनाएं की गई है।

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान
मनुज वास सचराचर रूप राम भगवान

शिव ही अहंकार, ब्रह्म ही बुद्धि, मन ही चन्द्रमा और महत्त्व ही चित्त है। चर अचर रूपी भगवान रामचन्द्र जी स्वयं मनुष्य के निवास स्थान हैं।

मंदोदरी ज्ञान स्वरूपा है और रावण मोह का प्रतीक। जीव का मोह तब तक दूर नहीं होता जब तक उसे विराट सत्ता का परिचय नहीं प्राप्त होता। इसलिए मन्दोदरी ने रामजी के प्रति मानव मात्र से प्रीति उत्पन्न करने के उद्देश्य से रावण के बहाने विराट रूप का प्रतिपादन किया। भगवान का विराट स्वरूप जान लेने पर हम 'स्व' के दायरे से मुक्त होकर विराट जगत के निवासी बन जाते हैं और रामजी के चरणों में प्रीति लगाकर अनायास ही मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं। मंदोदरी भी इसी उद्देश्य से रावण से प्रार्थना करती है—

अस विचारि सुनु प्राणपति प्रभु सब बय बिहाइ
प्रीति करहु रघुवीर पद मम अहि बात न जाइ

हे प्राणपति ! ऐसा विचारकर, बैर छोड़ दीजिए और प्रभु राम जी के चरणों से प्रीति जोड़िए। जिससे मेरा सुहाग बना रहे।

जीव का ब्रह्म से विरोध कैसा ? मंदोदरी द्वारा वर्णित यह रहस्य जान लेने पर जीव की प्रीति रामजी के चरण कमलों से अवश्य जुड़ेगी।

राम विभीषण संवाद

परम भगवत विभीषण लंकापति रावण के छोटे भाई एवं भगवान राम के अनन्य भक्त थे। लंकापुरी में रहते हुए भी वे राम-राम का नित्य कीर्तन करते थे। हनुमानजी जब सीता की खोज के लिए लंका गए तो उन्होंने स्वयं विभीषण के मुँह से राम का नाम सुना था।

राम-राम तेहि सुमिरन कीन्हा हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा

रामजी से विभीषण के दो स्थलों पर संवाद होते हैं। प्रथम सुन्दरकाण्ड में तथा दूसरा राम-रावण युद्ध के अवसर पर लंकाकाण्ड में उल्लखित है। प्रथम संवाद जहां भगवान की शरण में जाने के महात्म्य को प्रकाशित कर उनके श्री चरणों में भक्तजनों की राशि राशि श्रद्धा का वृद्धि करता है

वहां दूसरा संवाद शाश्वत आध्यात्मिक ज्ञान की वृद्धि कर हमें हर प्रकार से अभय बानाता है।

लंकापति रावण भरी सभा में विभीषण का अपमान कर देता है पर विभीषण उससे भी राम नाम जपने को कहते हैं कि आप मेरे बड़े भाई हैं आप पिताके समान हैं। आपने भले ही मुझे मारा है पर आपका हित तो केवल राम के भजन में ही है।

तुम पितु सरिस भले मोहि मारा राम भजे हित नाथ तुम्हारा

इसके बाद वे सीधे सिन्धु पार करके राम की शरण में आ गये। मार्ग में विभीषण के मन में राम चरण दर्शन की जो उत्कंठा उठती है वह वर्णनातीत है। वे अनेक प्रकार की कल्पनाएं करते हैं।

देखिहौं जाइ चरन जलजाता अरुन मृदुल सेवक सुखदाता
जे पद परिस तरी रिषि नारी दंडक कानन पावन कारी
जे पद जनक सुता उर लाए कपट कुरंग संग धर धाए
हर उर सरोज पद जेई अहो भाग्य मैं देखिहौं तेई

विभीषण अपने मन में न जाने कितनी कल्पित कल्पनाएं लिए रामजी के पास चले जा रहे थे। वे वारम्वार अपने सौभाग्य का बखान कर रहे थे कि मैं जाकर रामजी के लाल एवं सुकोमल चरण भर आंखों देखूंगा जिनकी सेवा करते रहने वाले को सदा सुख ही मिलता है। जिन चरणों का स्पर्श पाते ही गौतम की पत्नी अहल्या तर गई, जिन चरणों ने दण्डक वन को पवित्र कर दिया, जिन चरणों को जानकीजी सदा अपने चरणों में बसाए रहती हैं जो चरण कपट मृग को पकड़ने के लिये उसके पीछे धरती पर पड़ते चले जा रहे थे, जो चरण शंकरजी के हृदय रूपी सरोवर में निरंतर खिले रहते हैं, सौभाग्य से उन चरण कमलों का आज मैं जी भर दर्शन करूंगा।

भक्त विभीषण की कल्पना कितनी उदात्त एवं भावपूर्ण है इसका स्मरण करते ही श्रद्धा के अश्रु पुष्प भक्त एवं भगवान के चरणों में स्वतः सर्मपित हो जाते हैं। विभीषण को पुनः रामजी के चरणों के प्रति भरतजी के अनुराग का भी स्मरण हो जाता है। वे कहते हैं कि जिन पावन चरणों की पादुकाओं में भरतजी अपना मन निरंतर लगाए रहते हैं मैं उन्हीं का आज दर्शन अपने नेत्रों से करूंगा मैं कितना भाग्यशाली हूं।

जिन पायन की पादुकन्हि भरत रहे मन लाइ
ते पद आज बिलोक हौं इन नयनन्हि अब जाइ

भक्त विभीषण यही भाव संजोए रामजी के पास गये। उन्हें देख कर सुग्रीवादि ने आशंका प्रकट की कि हो न हो, यह दशानन रावण का कोई दूत हो, इस पर रामजी अपना स्वभाव ही प्रकट कर देते हैं।

मम पन सरनागत भयहारी

भाई मेरा प्रण तो शरण में आये हुए भक्त का भय दूर कर देना है। अगर किसी पर करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या का पाप भी लगा हो तो भी मैं शरणागत की रक्षा करता हूँ। यह मेरा स्वभाव है।

कोटि बिप्र बध लागहि जाहूँ आए सरन तजौं नहिं ताहूं

कारण कि कितना ही बड़ा पातकी प्राणी क्यों न हो, जब मेरे सम्मुख आ जाता है तो उसके एक क्या कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

सनमुख होई जीव मोहि जबहिं जनम कोटि अघ नासहि तब ही

रामजी को सब ज्ञात है। सभी को नचाने वाले भी तो वे ही हैं। जब जीव के पापों का क्षय हो जाता है और रामजी की इच्छा या प्रेरणा होती है तभी वह उनके दर्शन पाता है। वे पापियों के स्वभाव को बड़ी सरलता से कह देते हैं।

पापवंत कर सहज सुभाऊ भजन मोर तेहि भाव न काऊ

देखिये! पापियों का तो यह सहज स्वभाव है उन्हें मेरी सेवा बिलकुल अच्छी नहीं लगती है। यदि विभीषण दुष्ट हृदय वाला होता अथवा उसमें अब भी रंच मात्र दुष्टता या कुटिलता रहती तो मेरे सम्मुख क्यों आता?

जो पै दुष्ट हृदय सोई होई मोरे सम्मुख आवकि सोई

कितना सीधा सादा एवं सरल स्वभाव है रामजी का। वे कहते हैं कि विभीषण का अंतःकरण तो निर्मल हो चुका है और मुझे निर्मल मन वाला ही पाता है कारण कि मुझे छिद्र आदि कुटिलता जरा भी नहीं रुचती।

निर्मल मन जान सो मोहि पावा मोहि कपट छल छिद्र न भावा

जाओ ! विभीषण को आदर सहित ले आओ। रामजी की ऐसी आज्ञा पाते ही अंगद हनुमान आदि अनेक कपि चल पड़े और विभीषण को अपने आगे करके रामजी के समीप ले चले। विभीषण का मानस भक्ति की सुरसरि से तरंगित हो रहा था। उन्होंने दूर से ही दोनों नयनानन्द भाइयों की अलौकिक छवि देखी और मुग्ध हो गये। समीप आकर उन्होंने रामजी को अपना दीनतापूर्ण परिचय देकर चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। भगवान ने भक्त को अपने चरणों में झुका देखा तो लपक कर हृदय से लगा लिया और भक्तों का भय दूर करने वाले रामजी ने विभीषण का परिचय पूछ कर कहा :-

मैं जानों तुम्हारि सब रीति अति नय निपुन भाव अनीति

हे सखा मैं तुम्हारा समस्त आचार व्यवहार भलीभांति जानता हूं कि तुम सारा काम नीति विवेक और न्याय के अनुसार करते हो। तुम्हें अनीति बिलकुल अच्छी नहीं लगती है। इस पर विभीषण ने कहा कि अब जब आपके चरण कमलों के दर्शन मुझे मिल गये तब मुझे किस बात का भय है ? और जीव को तब विश्राम एवं कुशलता की प्राप्त नहीं होती।

तब लगि कुशल न जीव कहं सपनेहु मन विस्रामा
जब लगि भजत न राम कहं सोक धाम तजि काम

हे रामजी ! जब तक यह जीव सब प्रकार का शोक उत्पन्न करने वाली विषय वासना का त्याग नहीं करता और आपका भजन नहीं करता तब तक उसे स्वप्न में भी न तो विश्राम मिलता है और न उसे कुशलता ही मिलती है।

मानव हृदय में यदि रामजी का निवास नहीं होगा तो लोभ, मोह, मत्सर आदि विकार रहेंगे। रामजी तो सर्वदा प्रकाशमान है, परम ज्योति है। यदि हम ज्योसत की उपासना नहीं करते हैं तो विकारों की निशा में ही भटकेंगे और राग द्वेष के उलूक हमारे मानस विपिन में अपना निवास बना लेंगे।

तब लगि हृदय बसत खल नाना लोभ मोह मत्सर मद माना
जब लगि उर न बसत रघुनाथा धरे चाप सायक कटि माथा

ममता तरुन तमी अंधियारी राग द्वेप उलूक सुखकारी
तब लगि बसत जीव मनमाही जब लगि प्रभु प्रताप रवि नाही

हे नाथ ! मैंने आपके चरणों को पा लिया है, अब मेरा सब प्रकार से कुशल ही कुशल है। आप जिस पर अनुकूल होते हैं वह त्रिताप (दैहिक) दैविक एवं भौतिक तापों) से मुक्त हो जाता है। मेरा कितना बड़ा सौभाग्य है वह मैं कह नहीं सकता।

जासु रूप मुनि ध्यान न आवा तेहि प्रभु हरपि हृदय मोहि लावा

अहो भाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज
देखऊं नयन विरंचि सिव सेव्य जुगल पद कंज

जिनका स्वरूप मुनियों तक के ध्यान में नहीं आ पाता उन्हीं प्रभु ने आज मुझे हृदय से लगा लिया है। हे कृपा एवं सुख के निधान राम ! मैं इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूं कि मैं अपनी आँखों से इन चरण कमलों का दर्शन किया है जिनकी सेवा ब्रह्माजी एवं शंकरजी नित्य करते रहते हैं।

भक्त विभीषण की निश्छल वाणी सुन कर रामजी ने विभीषण को अपने स्वभाव का रहस्य ही बता दिया।

सुनहु सखा निज कहऊं सुभाऊ जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊँ
जौं नर होइ चराचर दोही आवइ समय सरन तकि मोही
तजि मद मोह कपट छल नाना करौं सद्य तेहि साधु समाना

हे सखा ! अब मेरा स्वभाव सुनो ! जिसे काग भुशुण्डि पार्वती एवं शिवजी भली भाँति जानते हैं। यदि कोई व्यक्ति जड़-चेतन का दोही होकर भयभीत हो मेरी शरण में आ जाता है और मद, मोह, छल, कपट आदि को छोड़ देता है तो मैं उसे तत्काल साधु के समान बना डालता हूं। इतना ही नहीं है विभीषण, एक रहस्य मैं तुम्हें और बतलाता हूं। अब तुम सुनो कि कैसा भक्त मेरे मन में बराबर निवास करता है।

जननी जनक बन्धु सुत दारा तन धन भवन सुहृद परिवारा
सब कै ममता ताग बटोरी मम पद मनहि बांधि बरि डोरी
समदासी इच्छा कछु नाही हरष सोक भय नहि मन माही
अज सज्जन मम उर बस कैसे लोभी हृदय बसै धन जैसे

जो पुरुष अपने माता पिता बन्धु पुत्र स्त्री, तन-धन, भवन और प्रिय परिवार आदि की ममता की डोरियों को बटांकर उसमें से अपना मन लपेट कर उसे मेरे चरणों में बांध देता है अर्थात इन सबके प्रति उसकी जो ममता है वह सब मेरे चरणों में लगा देता है, जो समदर्शी है जिसके मन में कोई भी इच्छा नहीं है और जो हर्ष, शोक, भय से रहित है ऐसा सज्जन भक्त मेरे हृदय में उसी भाँति निवास करता है जिस भांति लोभी के हृदय में धन बसा रहता है।

रामजी कहते हैं कि मैं तो केवल भक्तों के अहसान के लिये ही शरीर धारण करता हूं।

तुम सरीखे सन्त प्रिय मोरे धरौं देह आन निहोरे
सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम
ते नर प्रान समान मम जिनके द्विज पद प्रेम

हे विभीषण ! मुझे तो तुम्हारे समान ही सन्त प्रिय लगते हैं और मैं अन्य किसी के लिये नहीं तुम्हारे जैसे सन्तों की रक्षा के लिये ही बार-बार अवतार धारण करता हूं। हे तात ! मेरा एक रहस्य और सुनो। जो मनुष्य सगुन ब्रह्म के उपासक है, जो सदा दूसरों का हित ही करते हैं, जो दृढ़ता से और नियम का पालन करते हैं और जो ब्राह्मणों के चरणों से प्रेम करते हैं वे मुझे प्राणों के समान प्रिय है।

रामजी के मुख से उनका ही स्वभाव सुनकर सभी बानर, भालू जय जयकार कर उठे और विभीषण प्रेम से उन्मत होकर श्री चरणों में लोट गये। रामजी कितने कृपालु हैं अपने भक्तों के प्रति भक्त का थोड़ा भी शुद्ध भाव जानकर वे ऐसा रीझते हैं कि लोक का राज्य देकर भी उन्हें संकोच होता है कि कहीं मेरा दान कम तो नहीं है। ऐसे प्रभु को छोड़ कर जो अन्य किसी का भजन करता है वह पुच्छ एवं सींग से रहित पशु ही है। धन्य है रामजी की करुणा और भक्त विभीषण की निर्मल भक्ति जो युगों युगों तक कोटि कोटि भक्तों के मानस थल में भक्ति की भागीरथी प्रवाहित करती रहेगी।

आध्यात्मिक विजय रथ

पूर्व अध्याय में वर्णित राम विभीषण सम्वाद भक्त एवं भगवान दोनों के चारु स्वभावों को प्रस्तुत करता है। लंका काण्ड में वर्णित दूसरा सम्वाद

ज्ञान अध्यातम भक्ति, वैराग्य की दृष्टि से समस्त भारतीय भक्ति साहित्य में अपने ढंग का अनपमेय है। गोस्वामी तुलसीदास ने राम-विभीषण सम्वाद के बहाने मानव मात्र को एक अपूर्व विजय रथ प्रदान किया है, जिस पर आरूढ़ होकर कोई भी व्यक्ति महादुर्धर्ष जीवन समर में विजय श्री का वरण कर सकता है।

लंका में राम-रावण का घनघोर समर चालू है। त्रैलोक्य विजयी महादुर्धर्ष लंका पति रथारूढ़ होकर युद्ध भूमि में ससैन्य आता है। असुर निकन्दन रामजी ऐसे महायोद्धा के सम्मुख बिना रथ के ही उपस्थित हैं। रावण को रथ पर एवं रामजी को विरथ देख कर भक्तराज विभीषण व्याकुल हो जाते हैं।

रावन रथी बिरथ रघुबीरा देखि बिभीषण भयउ अधीरा
अधिक प्रीति मन मा सन्देहा बन्दि चरन कह सहित सनेहा

रामजी से विभीषण का अतिशय प्रेम था इसीलिये उनके मन में संदेह हो गया कि ये रावण ऐसे महावली से इस प्रकार कैसे लड़ पायेंगे। भक्त का यह सन्देह भक्ति की पराकाष्टा है, कारण कि वह अपने आराध्य का हर प्रकार से वर्चस्व देखना चाहता है। उसीके अनुसार विभीषण ने राम के चरण कमलों की वन्दना करके अपना सन्देह प्रकट कर दिया।

नाथ न रथ नहि तनु पद त्राना केहि बिधि जितब बीर बलवाना

हे नाथ आपके पास तो न रथ है, न शरीर की रक्षा करने वाला कवच है न पैरों में जूते हैं तब आप उस वीर बलवान को कैसे जीतेंगे?

भगवान ने भक्त का सन्देह ताड़ लिया और उसी के बहाने लोक भर का भय दूर करने वाला उपदेश दिया।

सुनहु सखा कह कृपा निधाना जेहि जय होइ स्पन्दन आना

कृपानिधान ने कहा—देखो मित्र! जिस रथ पर चढ़ कर लड़ने से विजय मिलती है वह रथ कुछ दूसरे ही प्रकार का होता है। वह रथ कैसा है और किस भांति प्राप्त किया जा सकता है यह सुनो—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका सत्यशील दृढ़ ध्वजा पताका
बल बिवेक दम पर हित घोरे छमा कृपा समता रज जोरे
ईस भजन सारथी सुजाना बिरति चर्म सन्तोष कृपाना
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा बर विज्ञान कठिन को दंडा
अमन अचल मन त्रोन समाना सम जम नियम सिलीमुख नाना
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा ऐहि सम बिजय उपाय न दूजा
सखा धमामय अस रख जाके जीनत कहं न कतहुं रिपु ताके

वीरता और धैर्य ही उस रथ के दो पहिये हैं, सत्य और शील ही उस रथ की ध्वजा एवं पताका है। बल विवेक, इन्द्रियों का दमन और परोपकार ही उसके घोड़े होते हैं, जो क्षमा, कृपा और ममता की रस्सी से उस रथ में जुते रहते हैं। ईश्वर का भजन ही उस रथ का चतुर सारथी होता है। वैराग्य ही उस पर चढ़ कर लड़ने वाले की ढाल होती है, सन्तोष ही कृपाण होता है, दान ही फरसा होता है, बुद्धि ही प्रचण्ड शक्ति (बरछी) होती है, शुद्ध विज्ञान (तत्व ज्ञान) हो उसका प्रचण्ड धनुष होता है। निर्मल (पाप रहित) और स्थिर (अंचल) मन ही उसका तूणीर होता है शम, यम और नियम ही उसके वाण होते हैं, ब्राह्मण और गुरु की पूजा ही उसका अभेद्रय कवच होता है। इस (रथ पर चढ़ कर युद्ध करने) के समान विजय प्राप्त करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। देखो सखे ! जिसके पास ऐसा धर्म मय रथ रहता है अर्थात इन सभी बातों को जो जीवन में उतारता है, तदवत आचरण करता है उसके लिए तो कहीं ऐसा शत्रु नहीं है जो जीता न जा सके।

रामजी ने भक्त विभीषण के बहाने लोक मंगल के लिये सर्वदा अलौकिक रथ प्रदान कर दिया। इस अद्‌भुत आध्यात्मिक रथ का ऐसा प्रभाव है कि इस पर आरूढ़ होकर समाज, हमारा धर्म काल के दुर्धर्ष वात्याचक्रों को सफलतापूर्वक झेलता हुआ आज भी अपनी अमरता की विजय वैजयन्ती फहरा रहा है। रामजी ने आगे कहा—

महा अजय संसार रिपु जीति सकै सो वीर
जा के अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा भतिधीर

धीर बुद्धि वाले सखे ! जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो वह वीर इस संसार के महान शत्रु (मोह) को भी जीत लेता है, फिर रावण किस गिनती में है ?

रामजी तो सर्वकाल में अपने भक्तों का कल्याण करने वाले हैं। उन्होंने न केवल भक्त विभीषण का ही मोह दूर करने का यत्न किया अपितु उसके बहाने लोक को मोह से मुक्त करने हेतु उपर्युक्त वचन कहे। रामजी का यह अद्भुत उपदेश सुनकर विभीषण गद्गद् हो गये। उन्होंने रामजी के पैर पकड़ लिए।

सुनि प्रभु बचन विभीषण हरषि गहे पद कंज
ऐहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज

प्रभु के वचन सुनकर विभीषण ने हर्ष पूर्वक रामजी के चरण कमल पकड़ कर कहा कि हे कृपा और सुख के पुंज राम ! आप कितने दयालु हैं कि आपने इसी बहाने मुझे इतना महत्वपूर्ण ज्ञान दे डाला।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने मानस में जिस विजय रथ का रूपक प्रस्तुत किया है वह समस्त भारतीय ज्ञान भक्ति योगादि का ज्योतिर्मय त्याग हैं और मानव को जीवन जगत के बन्धनों से मुक्त कर ब्राह्मी स्थिति प्रदान करने वाला सिंह द्वार है।

राम का भरत को उपदेश :--
संत असंत के भेद

परात्पर ब्रह्म भगवान राम ने मनुष्य रूप में अवतार धारण कर भक्तों के रंजन एवं लोक मंगल के उद्देश्य से अनेक लीलाएं की है। उनकी अहेतुक करुणा कृपा सदा भक्त जनों पर बरसती रहती है। भक्त उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। फिर भक्त शिरोमणि भरतजी एवं हनुमानजी का क्या कहना। भरतजी तो रामजी से एकदम अभिन्न ही थे।

एक बार अयोध्या के बाहर एक सुन्दर वाटिका में रामजी अपने सखों एवं भाइयों के साथ विचरण के लिए गये। वहीं पर सनकादि मुनि भी आये और उन्होंने रामजी की भक्ति पूर्ण वन्दना की। उनके चले जाने के पश्चात भरतजी के मन में इच्छा हुई कि रामजी के श्री मुख से उनकी वाणी को श्रवण किया जाय जिससे हम सब के अंतर का भ्रम मिटे। पर संकोच

वश पूछ नहीं सके। सभी हनुमानजी का मुख देखने लगे कि ये कुछ पूछे। रामजी तो अन्तर्यामी हैं। वे फौरन ताड़ गये। उन्होंने कहा कि हे हनुमान ! क्या कुछ कहना चाहते हो ? हनुमानजी ने हाथ जोड़कर कहा कि स्वामी ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, पर प्रश्न करते उन्हें संकोच हो रहा है। रामजी ठहरे भक्तों के बस में, उन्होंने कहा कि तुम तो मेरा स्वभाव जानते हो। भला मुझ में और भरत में कुछ अन्तर है ?

इस पर भरतजी ने रामजी के चरण पकड़ कर कहा—

नाथ मोहि संदेस कछु सपनेहु शोक न मोह
केवल कृपा तुम्हारिहिं कृपानन्द सन्दोह

भला भक्त के मन में रामजी की कृपा से कभी भी किसी प्रकार का सन्देह, शोक या मोह हो सकता है ? नहीं, भरतजी ने कहा—हे नाथ ! आपकी कृपा तो मुझ पर निरन्तर बनी रहती है जिससे मेरे मन में कभी स्वप्न में भी संदेह, शोक या मोह नहीं रहता है, फिर भी हे कृपा निधान ! आपसे पूछने की कुछ धृष्टता तो कर ही रहा हूँ।

भरतजी तो रामजी के सेवक हैं और रामजी सदा अपने सेवकों का मन रखते आये हैं। भरतजी को यह रहस्य भलीभांति ज्ञात है। तभी तो वे पूछते हैं—

संतन के महिमा रघुराई बहु विधि वेद पुरानन गाई
श्री मुख तुम पुनि कीन्ह बड़ाई तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई
सुना चहौं प्रभु तिन्ह कर लच्छन कृपासिन्धु गुन ग्यान विचच्छन

हे नाथ ! वेद और पुराणों ने संतों की अपार महिमा बतलाई है। आप भी अपने श्री मुख से उनकी बहुत बड़ाई किया करते हैं। इतना ही नहीं आप तो उनसे बहुत प्रेम भी करते हैं। आप बड़े कृपालु गुणी और परम ज्ञानी हैं। मैं उन्हीं के लक्षण सुनना चाहता हूं। मुझे सन्त और असन्त का भेद भी बतलाइये।

रामजी भरतजी की स्नेह वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर कहने लगे—

संत असंतन के असि करनी जिमि कुठार चन्दन आचरनी
काटे परसु मलय सुनु भाई निज गुन देइ सुगन्ध बसाई

देखो भाई ! सन्त और असन्त का आचरण वैसा ही होता है जैसा चन्दन और कुल्हाड़ी का होता है। कुल्हाड़ी तो चन्दन को काट डालती है, लेकिन चंदन रूपी संत अपने को काटने वाली कुल्हाड़ी में भी अपना गुण सुगन्ध धर देता है।

अब इस आचरण का फल क्या होता है उसे भी रामजी बतलाते हैं।

ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग वल्लभ श्रीखंड
अनल दाहि पीरत घनहि परसु बदन यह दंड

इसका परिणाम यह होता है कि बुराई करने वाले की भी भलाई करने के कारण चन्दन तो देवताओं के भी शीश पर चढ़ता है और सारा जगत उसे हृदय पर मस्तक पर धारण किये अपनाये रहता है। सन्त तो देवताओं से भी बड़ा है। उधर कुल्हाड़ी की दशा देखो। काटते-काटते जब वह भी भोड़ी हो जाती है तो उसे यह दण्ड दिया जाता है कि उसका मुख तो आग में दे दिया जाता है और उसे घन से पीटा जाता है। यह तो हुआ सन्त असन्त के स्वभावों का वर्णन और परिणाम अब सन्त के लक्षण सुनो।

पर दुख दुख सुख सुख देखे परा विषय अलंपट सील गुना कर
सब अभूत रिपु विमद विरागी लोभ मरष हरष भय त्यागी
कोमल चित दीनन पर दाया मन बच क्रम मम भगति अमाया
सबहि मान प्रद आपु अमानी भरत प्रान सम मम तेइ प्रानी

देखो भरत ! सांसारिक विषयों में जिनकी रंचमात्र भी आसक्ति नहीं है, जो शीलवान एवं गुणों के भाण्डार हैं, जो पर दुख में दुखी और दूसरे के सुख में सुखी होते हैं सबको बराबर समझते हैं जिनकी किसी से भी शत्रुता नहीं है, जिनमें अभिमान का नाम नहीं है, जो सब कुछ छोड़ कर बैठे हैं तथा जिनके मन में न लोभ है, न क्रोध है न भय है न हर्ष है, उनका चित अत्यन्त कोमल होता है। वे सदा दीनों पर दया करते हैं। वे मन वचन एवं कर्म से मुझमें निष्कपट भक्ति रखते हैं। वे सबका सम्मान करते हैं पर स्वयं अपना सम्मान कराने से दूर भागते हैं। हे भरत ! ऐसे प्राणियों को मैं प्राण के सम्मान प्रिय समझता हूँ।

विगत काम मम नाम परायन सांति विरति विनती मुदितायन
सीतलता सरलता मइत्री द्विज पद प्रीति धरम जनइत्री

ये सव लच्छन बसहिं जासुउर जानेहु तात संथ संतत फुर
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं पुरुष वचन कवहुं नहिं वोलहिं

जो सभी कामनाओं को छोड़कर केवल मेरे नाम का भजन करते हैं उनके मन में सदा शांति, वैराग्य, नम्रता और प्रसन्नता भरी रहती है, जो सदा शीतल, सरल और सवके मित्र होते हैं, जो धर्म का मार्ग दिखाने वाले ब्राह्मणों के चरणों से प्रीति करते हैं वे ही सच्चे सन्त हैं। हे भरत ! ये सव लक्षण जिसमें हो उसे सच्चा सन्त मानिये। जो सदा शान्त रहे, इन्द्रियों का दमन कर नियम, नीति का पालन करते हुए व्यवहार करते हैं और कठोर वचन कभी नहीं बोलते हैं।

निन्दा स्तुति उभय सम ममता मम पद केज
ते सज्जन मम प्रान प्रिय गुन मन्दिर सुख पुंज

जो निन्दा और प्रशंसा दोनों को वरावर समझते हैं और जो मेरे चरणों में वरावर ममता वनाए रखते हैं, ऐसे गुणी और सुशील सज्जनों को मैं प्राणों से भी प्रिय समझता हूं। हे भरत ! अब असन्तों का स्वभाव सुनो, पर भूल कर भी उनका साथ नहीं करना कारण कि—

तिन्ह कर संग सदा दुखदाई जिमि कपिलहिं घालइ हरहाई

उनका संग करने से सदा वैसे ही दुख मिलता है जैसे हरियाली देख कर उधर ही दौड़ने वाली हरहाई गाय अपने साथ सीधी सादी कपिला गाय को भी पिटवा डालती है। अब इनके लक्षण सुनो—

खलन्ह हृदय अति ताप विसेखी जरहिं सदा पर संपति देखी
जहं कहुं निंदा सुनहिं पराई हरषहिं मनहुं परी निधि पाई
काम क्रोध मद लोभ परायन निर्दय कपटी कुटिल मलायन
वैर अकारन सव काहू सो जो कर हित अनहित ताहू सो
झूठइ लेना झूठइ देना झूठइ भोजन झुठ चवेना

दुष्टों [असन्तो] का हृदय सदा ईर्ष्या के ताप से जला करता है। वे सदा दूसरों की सम्पति देख देख कर जलते रहते हैं। दूसरे की बुराई सुन कर तो वे ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानो उन्हें कहीं गड़ा हुआ धन का भाण्डार ही

मिल गया हो। उनके मन में सदा काम, क्रोध, मद और लोभ भरा रहता है। वे बड़े निर्दयी, कपटी, खोटे एवं पापी होते हैं। वे बिना कारण ही सबसे दुश्मनी लिये रहते हैं। उनके साथ जो भलाई करता है उसके साथ भी वे बुराई करते हैं। उनका सारा लेन-देन (व्यवहार) झूठा कपट भरा होता है। उनका भोजन करना या चवेना चवाकर रह जाना भी झूठा साबित होता है। चना चवाकर भी वे ऐसी डींग मारते हैं कि आज हलुआ पुड़ी ही खाया है।

बोलहि मधुर वचन जिमि मोरा खाहिं महा अहि हृदय कठोरा

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपवाद
ते नर पांवर पापमय देह धरे मनुजाद

वे मोर के समान तो बड़ी मधुर वाणी बोलते हैं पर उनका हृदय मोर के समान इतना कठोर होता है कि बड़े-बड़े सांपों को भी पकड़ कर खा जाते हैं। मीठी बोली बोलकर भी हानि पहुंचा सकते हैं। वे सदा सबसे झगड़ा ठाने रहते हैं, दिन रात पराई स्त्री की ताक में रहते हैं, पराया धन हड़पने की चेष्टा में सर्वदा लीन तथा दूसरों की निन्दा में लगे रहते हैं। ऐसे नीच पापी मनुष्यों को मनुष्य रूप में भयंकर पापी निशाचर ही समझना चाहिये।

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन सिस्नोदर पर जमपुर त्रासन
काहू की जौ सुनहिं वड़ाई स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई
जब काहू कै देखहिं विपती सुखी भये मानहु जगे नृपती
स्वारथ रत परिवार बिरोधी लम्पट काम लोभ अति क्रोधी
मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं आपु गये अरु घालहि आनहिं

लोभ ही जिनका ओढ़ना और लोभ ही जिनका विछौना है। वे पशुओं के समान पेट भरने और काम वासना में ऐसे लगे रहते हैं कि उन्हें कभी नरक का भी भय नहीं हो पाता है। किसी की उन्नति की बातें सुनकर वे ऐसी लम्बी सांसे छोड़ते हैं मानों उन्हें जूड़ी ही आ गई हो और जब किसी की विपत्ति या कष्ट की बातें सुनते हैं तब ऐसे प्रसन्न होते हैं मानो संसार भर के राजा हो गये हैं। वे दिन रात अपने ही स्वार्थ की पूर्ति में लगे रहते हैं और परिवार वालों को देख सर्वदा कुढ़ते रहते हैं। वे बड़े ही लम्पट, कामी, क्रोधी और लोभी होते हैं। वे न माता को, न पिता को, न गुरु को और न ब्राह्मणों को ही मानते हैं। आप तो बिगड़े ही रहते हैं पर अपने साथ दूसरों को भी ले डूबते हैं।

करहि मोह बस द्रोह परावा संत संग हरि कथा न भावा
अवगुन सिन्धु मन्दमति कामी वेद विदूषक पर धन स्वामी
विप्र द्रोह पर द्रोह विसेषा दम्भ कपट जिय धरे सुवेषा
ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेता नाहि
द्वापर कछुक बृन्द बहु होइ हइं कलि जुग माहि

वे मोह (अज्ञान) के कारण सदा दूसरों से झगड़ा ठाने रहते हैं। उन्हें न तो सन्तों का संग भाता और न भगवान की कथा ही भाती है। उनमें अवगुण ही अवगुण भरे रहते हैं। उनकी बुद्धि अत्यन्त मन्द होती है। वे कामी होते हैं, वेद की निन्दा करते हैं और पराया धन हड़पने के ही चक्कर में रहते हैं। यों तो वे सभी के द्रोही होते हैं पर ब्राह्मणों से उन्हें विशेष द्रोह होता है। उनके हृदय में कूट-कूट कर दम्भ और कपट भरा रहता है पर बाहर से अपना स्वरूप सजा कर रखते हैं। ऐसे अधम मनुष्य सत्य युग, त्रेता में तो नहीं द्वापर में थोड़े बहुत होते हैं पर कलियुग में तो इन्हीं की भरमार होती है।

सन्त असन्त का भेद कहने के वाद रामजी ने धर्माधर्म को भी वतलाया—

पर हित सरिस धरम नहिं भाई पर पीड़ा सम नहिं अधमाई
निर्नय सकल पुरान वेद कर कहेउ तात जानहिं कोविद नर
नर सरीर धरि जे पर पीरा करहिं ते सहहिं महा भव भीरा
करहि मोह बस नर अध नाना स्वारथ रत परलोक न साना
कलि रूप तिन्ह कहं मैं भ्राता सुभ अरु असुभ करम फल दाता

देखो भाई ! दूसरों की भलाई करने से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुख देने से बढ़ कर नीच कर्म और नहीं है। हे तात ! मैंने तुमसे सभी वेद पुराणों का निचोड़ कह दिया जिसे केवल विद्वान लोग ही जानते हैं। जो लोग मनुष्य का शरीर पाकर भी दूसरों को सताते हैं उन्हें वार-वार जन्म लेने एवं मरने का भीषण दुःख झेलना पड़ता है लोग मोह (अज्ञान) वश अनेक पाप कर्म करते हैं और थोड़े से स्वार्थ के लिये अपना परलोक भी बिगाड़ लेते हैं। हे भाई ! ऐसे लोगों का मैं कलि हूं और उनके कर्मानुसार शुभ एवं अशुभ फल देता हूं।

अस विचारि जे परम सयाने भजहिं मोहिं संसृति दुख जाने
त्यागहि कर्म सुभासुभ दायक भजहि मोहिं सुर नर मुनि नायक
सन्त असन्तन के गुन भाखे तेन परहिं भव जिन्ह लखि राखे
सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक
गुन यह उभय न देख यहिं देखिय सो अविवेक

ऐसा विचार कर परम चतुर लोग संसार को दुख से भरा जानकर केवल मेरा ही भजन करते हैं। इसीसे वे अच्छे एवं बुरे कर्म छोड़ मुझे देवता, नर एवं मुनियों का नायक मानकर भजते हैं। सन्त और असन्त के जो लक्षण मैंने बताए उन्हें हृदय में धारण कर लेने से लोग भवसागर में नहीं फंसते हैं। हे तात! सब गुण दोष माया के ही रचे हुए हैं। इनमें कोई वास्तविकता नहीं है। इसलिये विवेक इसी में है कि इनमें से किसी के चक्कर में न पड़े और जो पड़ता है वही अविवेकी है।

इस प्रकार रामजी ने सन्त-असन्त लक्षण बताने के बहाने एक ऐसे चिरंतन द्वार को खोल दिया है जिसमें प्रवेश करते ही उनके चरणों में अभंग प्रीति उत्पन्न होती है और जीव मोक्ष में अनायास ही प्राप्त कर लेता है।

काक भुशुण्डि गरुड़ सम्वाद : भक्ति ज्ञान का समुज्ज्वल दर्पण

रामचरित्र मानस के चार प्रमुख वक्ता माने गये हैं। ये हैं— भगवान शंकर, काक भुशुण्डि, याज्ञवल्क्य और स्वयं गोस्वामी तुलसीदास। इसी प्रकार पार्वती, गरुड़, भारद्वाज एवं रामचरित मानस के पाठक या श्रोता ये चार प्रमुख श्रोता हैं। शंकर पार्वती सम्वाद, याज्ञवल्क्य भरद्वाज सम्वाद, काक भुशुण्डि गरुड़ सम्वाद एवं गोस्वामी तुलसीदास तथा उनके प्रमुख श्रोता ये ही मानसरोवर (मानस रूपी सरोवर) के चार घाट हैं।

तेइ ऐहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि

रामजी ने जब रावण के साथ रण की लीला की थी तब वे नागपाश में बँध गये थे गरुड़जी ने उन्हें मुक्त कराया था। तबसे गरुड़जी के मन में भी बड़ा भारी विषाद (सन्देह) उठ खड़ा हुआ—

बन्धन काटि गयो उर गादा उपजा हृदय प्रचण्ड विषादा

गरुड़जी सोचने लगे कि जिनका नाम स्मरण करते ही लोग भव बँधनों को काट देते हैं, उन रामजी को दुष्ट असुर ने नागपाश में कैसे बाँध लिया। इस सन्देह के निवारण हेतु वे नारद, ब्रह्मा एवं शंकरजी के पास गये। भगवान शंकर ने उन्हें काक भुशुण्डि के पास भेज दिया।

गयऊ गरुड़ जहं बसैं भुशुण्डी मति अकुंठ हरि भगति अखण्डी

वे काग भुशुण्डिजी कैसे थे ? वे प्रखर बुद्धिवाले सच्चे भक्त थे। काग भुशुण्डि जी के दिव्य प्रभाव से नीलगिरि पर्वत माया के प्रभाव से रहित था। वहाँ पहुंचते ही गरुड़ जी का मन प्रसन्नता से खिल गया। काक भुशुण्डि जी वहाँ पर नित्य राम कथा कहते थे और बड़े बूढ़े पक्षी आकर सुनते थे। वे कथा प्रारम्भ ही करना चाहते थे कि खगराज गरुड़ पहुंच गये जिन्हें देखकर सभी पक्षीं हर्षित हो उठे। सभी ने गरुड़जी का स्वागत किया और जब वे आसन पर विराजमान हो गये तो कुशल क्षेम पूछने के बाद अपने आने का कारण बताया कि हे तात मैं जिस कार्य के लिये आया था वह तो आपके दर्शन से ही पूरा हो गया और आपका परम पवित्र आश्रम देखकर मेरा सारा मोह, सन्देह एवं नाना प्रकार के भ्रम अपने आप मिट गये। इसके बाद गरुड़जी ने प्रार्थना की—

अब श्रीराम कथा अति पावनि सदा सुखद दुख पुंज नसावनि
सादर तात सुनावहु मोहीं बारबार विनवौं प्रभु तोहीं

प्रभो ! आपसे मेरी यही बार-बार प्रार्थना है कि अब आप मुझे रामजी की वह अत्यन्त पवित्र कथा सुनाने की कृपा करें जिसे सुनने से सदा सुख ही सुख मिलता है और समस्त दुःख अपने आप नष्ट हो जाते हैं।

गरुड़जी की यह भक्ति सनी प्रार्थना सुनकर काक भुशुण्डिजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने रामजी की सम्पूर्ण कथा विस्तार से सुना दी। कथा सुनने के बाद गरुड़जी ने कहा—

गयउ मोर सन्देह सुनेउं सकल रघुपति चरित
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक

हे काक शिरोमणि भुशुण्डि ! यह आपकी ही कृपा है कि मैंने यह सारा चरित्र सुन लिया। इससे मेरा समस्त सन्देह मिट गया और रामजी के चरणों में अपार प्रीति उत्पन्न हो गई। रामजी को वन्धन में देखकर मुझ में जो मोह पैदा हो गया था वह अब दूर हो गया। इसपर भुशुण्डिजी ने कहा—

पठँ मोह मिस खगपति तोही रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही

हे पक्षिराज ! इसी मोह के बहाने रघुपति रामजी ने आपको यहाँ भेजकर मुझे तो बड़ाई दे डाली। भुशुण्डिजी ने कहा कि यह मोह बड़ा बलवान होता है। इसने बड़े-बड़े देवों, मुनियों तथा सिद्ध जनों को नचा डाला। हे गरुड़जी ! आप ही बताइये कि मोह ने किसे अन्धा नहीं किया, संसार में ऐसा कौन है जिसे काम ने न नचा दिया हो, तृष्णा ने मतवाला न बनाया हो, कौन है जिसे क्रोध ने न जलाया हो। ज्ञानी, तपस्वी, सूर, कवि, विद्वान, गुणी सभी तो विश्व में लक्ष्मी और लोभ के चक्कर में फँसे हैं। ऐसा कौन है जिससे प्रभुता ने बहरा न कर दिया हो और संसार में ऐसा कौन है जिसे मृगनयनी की बांकी चितवन के बाण ने घायल न कर डाला हो।

हे गरुड़जी मोह से केवल आप ही तो ग्रस्त नहीं हुए हैं। यह संसार का भवजाल ही ऐसा है जहाँ चिन्ता की नागिन सभी को डसती है यौवन का ज्वर सभी को सताता है कलंक का मच्छड़ सभी को काटता है, शोक का समीर सभी को कम्पा देता है। पुत्र, धन और लोक प्रतिष्ठा इन तीन प्रबल कामनाओं ने सबका मन बिगाड़ डाला है। हे गरुड़जी ! इन सबका कारण जानते हो ? यह सब माया का विशाल लम्बा चौड़ा परिवार है। इससे शंकरजी एवं ब्रह्माजी तक डरते हैं, फिर क्षुद्र जीवों की क्या बिसात है।

व्यापि रहेउ संसार मंह माया कटक प्रचंड
सेनापति कामादि भट दम्भ कपट पाखंड

इस संसार में माया की यह प्रचण्ड सेना छाई हुई है। काम, क्रोध, मत्सर, मोह, मद और लोभ ही इसके प्रबल सेनापति है और दम्भ, कपट तथा पाखण्ड ही योद्धा है।

इससे प्राणी की रक्षा कैसे हो ? इससे बचने का उपाय क्या है ? हे गरुड़जी वह भी सुन लीजिए।

सो दासी रघुवीर कै समुझें मिथ्या सोपि
छूट न राम कृपा विनु नाथ कहाँ पद रोपि

यह प्रबल माया भी रामजी की दासी है। यदि इसे ठीक से समझ लिया जाय तो जान पड़ेगा कि यह तो मिथ्या है। किन्तु नाथ! मैं प्रतिज्ञा पूर्वक कहे देता हूं कि राम की कृपा के बिना कोई भी उसके फन्दे से छूट नहीं सकता।

देखो गरुड़जी! जो माया सभी को नचाती है वह रामजी के केवल भौंह के संकेत पर अपना सारा समाज लिये नटी की भांति नाचती है। रामजी जैसे चाहते हैं माया को वैसे नाचना पड़ता है। रामजी की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है। वे ही तो सच्चिदानन्द धन है जो अजन्मा है, विज्ञान के रूप-रूप एवं वल के धाम हैं—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता अखिल अमोध सवित भगवन्ता
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता सब दरसी अनवध अजीता
निरमल निराकार निरमोहा नित्य निरंजन सुख सन्दोहा
प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी

वे सर्व व्यापक हैं, अखण्ड और अनन्त हैं और ऐसे भगवान हैं जिनमें अचूक शक्ति है। वे निगुंण भरे पूरे हैं, वाणी और इन्द्रियाँ कोई उन तक पहुंच नहीं सकती। वे सब कुछ देखने वाले निर्दोष और अजेय है। वे निर्मल निराकार मोह रहित, नित्य, माया रहित और सब सुखों के भण्डार हैं। उन प्रभु राम पर प्रकृति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वे सबके हृदय में सर्वदा बसे रहते हैं। वे ऐसे ब्रह्म हैं कि उनमें न कोई इच्छा है न विकार है और न उनका नाश होता है।

जब रामजी इतने समर्थ और गुणातीत हैं तो उनमें मोह होने का कोई कारण ही नहीं है। सूर्य के सामने क्या कभी अन्धकार ठहर सकता है? ऐसे समर्थ व्यापक प्रभु रामजी केवल भक्तों के लिए ही अवतार लेते हैं और सांसारिक पुरुषों की भाँति अनेक लीलाएँ करते हैं।

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप

हे गरुड़जी! जैसे कोई नट अनेक रूप धारण करके अभिनय करता है और भूमिका के अनुसार वैसा वैसा व्यवहार भी करता है पर वह जिस

पात्र का अभिनय करता है वह पात्र नहीं बन पाता है। अनेक रूप धारण करके भी उसका कोई भी धारण किया जाने वाला रूप नहीं होता है। रामजी की लीला भी वैसी ही समझो।

देखो गरुड़जी ! रामजी के सम्बन्ध में अज्ञान का प्रश्न स्वप्न में भी नहीं उठता। हाँ उठता कब है जब जीव माया से ग्रस्त हो जाता है।

माया वस मतिमन्द अभागी हृदय जवनिका बहु विधिलागी
ते सठ हठ वस संसय करहीं निज अज्ञान राम पर धरहीं

जिन दुर्बुद्धि वाले अभागे लोगों के हृदय पर परदे पड़े रहते हैं वे ही मुर्ख हठ करके ऐसा सन्देह किया करते हैं और स्वयं अज्ञानी होते हुए अपना अज्ञान रामजी पर थोप कर उन्हें सामान्य मनुष्य बताने लगते हैं। बताइये, जो लोग विकारों से सने हैं वे रामजी को कैसे जान सकते हैं।

रामजी का यह सहज स्वाभाविक स्वभाव है कि वे अपने भक्त का अभिमान रहने नहीं देते हैं।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ जन अभिमान न राखहिं काऊ

हे तात ! फिर आप तो रामजी के अत्यन्त कृपा पात्र हैं। अब मेरी भी कुछ जड़ताई सुन लीजिए। एक कल्प में जब रामजी ने अवतार लिया तो मैं उनका जन्म महोत्सव देखने के लिये अयोध्या चला गया। वहाँ कोटि मनोज लजावन हारे रामजी बाल क्रीड़ा कर रहे थे। सांसारिक बालक की भांति उन्हें क्रीड़ा रत देखकर मैं भी मोह ग्रस्त हो गया। बस रघुनाथजी ने अपनी माया को प्रेरित किया। उन्होंने मुझे पकड़ने के लिये अपना हाथ बढ़ाया। यह देखकर मैं उड़ चला। जहाँ जहाँ भी मैं उड़कर जाता, रामजी का हाथ दो अंगुल मात्र की दूरी पर पीछे दिखलाई पड़ता। मैं ब्रह्मलोक और सप्तावरण को भी भेद गया। पर प्रभुजी ने पीछा न छोड़ा। मैंने आँखें मूँद ली लेकिन जैसे ही खोली तो अपने को अयोध्या में पाया। भगवान हँस पड़े और मैं उनके मुख में ही समा गया। उदर में मैंने करोड़ों लोक, करोड़ों ब्रह्मा, शंकर, रवि शशि, यम आदि देखे पर दूसरा राम नहीं देखा।

भिन्न भिन्न मैं दीख सब अति विचित्र हरिजान
अगनित भुवन फिरेउ प्रभु राम न देखेउँ आन

राम तो एक ही है। दूसरा मैं देखता कहाँ से ? मुझे लगा मैं सैकड़ों कल्पों से अनेक ब्रह्माण्डों में घुम रहा हूं। लेकिन यह सब मात्र दो घड़ी में ही देख लिया था। मुझे भ्रम में जानकर रामजी फिर हंसे और मैं बाहर आ गया। बाहर आते ही रामजी फिर वही खेल करने लगे। तब मुझे प्रमाकुल देखकर उन्होंने अपनी माया को रोक दिया और फिर मुझसे कहने लगे कि तू आज जो चाहे सुख माँग ले। मैंने सोचा—

प्रभु कह देन सकल सुख सही भगति आपनी देन न कही
भगति हीन गुन सब सुख ऐसे लवन बिना बहु व्यंजन जैसे

रामजी भक्त की किस भांति परीक्षा ले रहे हैं। उन्होंने सब कुछ देने को तो कह दिया लेकिन अपनी भक्ति देने की बात नहीं कही। मैंने सोचा कि आदमी में चाहे जितने गुण हो लेकिन यदि वह भक्ति से हीन है तो उसी प्रकार नीरस होता है जैसे नमक से विना व्यंजन। इसलिये मैंने वही माँग लिया—

अविरल भगति विसुद्ध तव सुति पुरान जो गाव
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद को उपाव
भगत कलपतरु प्रनत हित कृपा सिन्धु सुख धाम
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम

आपकी जिस प्रगाढ़ एवं विशुद्ध भक्ति का वर्णन वेद और पुराणों में किया गया है जिसे योगीश्वर, मुनि खोजते फिरते रह जाते हैं और जिसे प्रभु की कृपा से कोई बिरला ही प्राप्त कर पाता है वही अपनी भक्ति, हे भक्तों के कल्पतरु ! शरणागत के हितकारी ! कृपालु ! सुखों के भण्डार राम ! दया करके उसे हमें दीजिए।

बस फिर क्या था, रामजी एवमस्तु कहकर परम सुखदायक वचन बोले—

सब सुख खानि भगति तैं मांगी नहिं जग कोऊ तोहि सम बड़ भागी

तुम तो सुख ही सुख से भरी मेरी भक्ति ही माँग बैठे हो। सचमुच तुम्हारे समान जगत में कोई भाग्यशाली नहीं है।

सुनहुं प्रसाद विहंग अब मोरे सब सुभ गुन वसिहइ उर तोरे
भगति ज्ञान विज्ञान बिरागा जोग चरित्र रहस्य बिभागा
जानब तैं सबही कर भेदा मम प्रसाद नहिं साधन खेदा

अब मेरी कृपा से तुम्हारे हृदय में जितने शुभ गुण हैं सब आ बसेंगे। मेरी कृपा से अब तुम ज्ञान विज्ञान वैराग्य मेरी लीलाओं योग और सबसे उत्कृष्ट भक्ति के भेद जान लोगे। इसके लिये तुम्हें कोई साधन करने का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा।

रामजी ने मुझे यह भी वरदान दे दिया कि मेरी माया से उत्पन्न होने वाला कोई भ्रम अब तुम्हें नहीं सता पायेगा। तुम सदा यह समझते रहना कि मैं अनादि, अजन्मा, गुण से अलग और गुणों से भरा हुआ ब्रह्म हूं।

रामजी को भक्त सर्वदा प्रिय लगते हैं। यह सारा चर अचर जगत उन्हीं का उपजाया हुआ है। वे कहने लगे—

सब मम प्रिय सब मम उपजाए सब ते अधिक मनुज मोहि भाए
तिन्ह मंह द्विज द्विज मंह स्रुतिधारी तिन्ह मंह निगम धर्म अनुसारी
तिन्ह मंह प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी ज्ञानिहु तें अति प्रिय विज्ञानी
तिन्ह तें पुनि मोहि प्रिय निज दासा जेंहि गति मोरि न दूसरि आसा

हे भुशुण्डि! यह जगत तो मेरा ही रचा हुआ है अतः मुझे, सभी प्रिय हैं पर मनुष्य तो विशेष प्रिय हैं। मनुष्यों में मुझे ब्राह्मण, ब्राह्मणों में भी वेद के जानने वाले, उनमें भी वेदों के बताए हुए मार्ग पर चलने वाले, उनमें भी विरागी और उनमें भी ज्ञानी प्रिय हैं। मुझे ज्ञानी से भी प्रिय परम तत्व को जानने वाले विज्ञानी प्रिय हैं। लेकिन उनसे भी अधिक मुझे अपने दास (भक्त) प्रिय है जो मुझे छोड़ कर और किसी पर आश्रित नहीं रहतें हैं।

रामजी तो सबके परम पिता हैं। पिता की प्रीति सब पर बराबर होती है लेकिन पिता उसी पुत्र को सर्वाधिक प्यार करता है जो पिता की सेवा को छोड़कर स्वप्न में भी दूसरा धर्म नहीं जानता है। फिर रामजी ने मुझे यह भी वरदान दिया कि तुम मुझे निरंतर स्मरण करना और काल भी तुम्हें नहीं छू पायेगा।

कबहुं काल न व्यापहि तोहीं सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही

रामजी कितने कृपालु हैं इसका वर्णन कोई नहीं कर सकता।

राम कृपा विनु सुनु खगराई जापन न जाइ राम प्रभु ताई
जाने विनु न होइ परतीती विनु परतीति होइ नहीं प्रीति
प्रीति विना नहि भगति दृढ़ाई नेमि खगपति जल के चिकनाई

रामजी के कृपा के विना कोई उनकी महिमा जान नहीं सकता। उसे जाने विना विश्वास नहीं हो पाता और विना विश्वास के प्रेम नहीं होता। हे खगपति ! विना प्रेम के भक्ति भी उसी प्रकार दृढ़ नहीं हो पाती जैसे जल की सतह पर पड़ी हुई चिकनाई स्थिर नहीं होती।

जैसे विना गुरु के ज्ञान नहीं होता और विना ज्ञान के विराग नहीं होता उसी भांति विना रामजी के भजन के जीव को सुख नहीं मिलता, यह वेद-पुराणों का कथन है। हे गरुड़जी ! इसे आप सत्य मानिए।

विनु विस्वास भगति नहिं तेहि विनु द्रवहिं न राम
राम कृपा विनु सपनेहुँ जीव न लह विश्राम

देखो ! विना विश्वास के भक्ति नहीं हो पाती और विन भक्ति के रामजी द्रवित नहीं होते तथा रामजी की कृपा के विना जीव को स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। इसलिये सब संशय एवं कुतर्कों को छोड़ कर रामजी का भजन करो।

रामजी की महिमा अमित है। कोई थाह नहीं पा सकता है।

काग भुशुण्डि का अपार ज्ञान एवं भक्ति भाव देख कर गरुड़जी पुलकित होकर पूछने लगे कि यह सब आपको कहां से मिली है ? इस पर भुशुण्डिजी ने लोमश ऋषि का वृतान्त तथा गुरु शाप की कथा कह सुनायी। उन्होंने कहा कि लोमश ऋषि के बारबार सगुण का खण्डन कर निर्गुण ब्रह्म का निरूपण करते थे और मैं यह मानने को तैयार नहीं था। इस पर उन्होंने शाप दे दिया कि तू चाण्डाल पक्षी कौआ हो जा। और मुझे यह शरीर मिला। लेकिन रामजी की कृपा से लोमश ऋषि ने द्रवित होकर राम कथा सुना दी। जब मैं काग हो गया तभी "राम कथा" का प्रसाद मिला, अतः यह शरीर मुझे बहुत प्रिय है।

एहि तन राम भगति मैं पाई तातें मोहि ममता अधिकाई

काग भुशुण्डि ने गरुड़जी को इसी प्रसंग में कलियुग के घोर प्रभावों को भी सुनाया और कहा कि राम नाम की असली महिमा तो केवल कलियुग में ही है।

कलि जुग एक राम गुन गाहा गावत नर पावत भव थाहा

उन्होंने गरुड़जी को ज्ञान, विराग, योग, विज्ञान सभी के रहस्यों को सुनाया पर भक्ति की महिमा को सर्वाधिक उच्च स्थान दिया। ज्ञान की प्राप्ति कठिन है, साधन कठिन है और फिर माया से बचना तो ज्ञानी के लिये और भी कठिन है। पर भक्ति रूपी चिन्तामणि जिसने पा ली उसने समझो सब कुछ पा लिया। यह सब सुनने के बाद गरुड़जी ने सात उत्तम एवं परम गूढ़ प्रश्न पूछे कि हे परम भागवत ! मुझे बताइये कि सबसे दुर्लभ शरीर, सबसे बड़ा दुख, सबसे बड़ा सुख, सबसे बड़ी पुण्य, सबसे बड़ी पाप, सन्त-असन्त भेद और मानस रोग कौन कौन है ? इस पर भुशुण्डिजी ने कहा—

नर समान नहिं कवनिउ देही जीव चराचर जाँचत जेही
नरक स्वर्ग अपवरग निसैनी ज्ञान विराग भगति शुभ देनी

सबसे दुर्लभ शरीर तो मनुष्य का है। यह नरक, स्वर्ग, मोक्ष, ज्ञान, विराग एवं भक्ति का साधन द्वार है। जो मानव शरीर पाकर भी रामजी को नहीं भजता वह अभागा मूर्ख है।

नहिं दरिद्र सम दुःख जग माही संत मिलन सम सुख जग नाही

दरिद्रता के समान न कोई दुःख है और संतों की संगति से बढ़ कर न कोई सुख है। संत दूसरों के मंगल के लिये दुख सहता है और असन्त दूसरों के अमंगल के लिये।

परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा पर निन्दा सम अघ न गरीसा

न तो अहिंसा से बढ़ कर कोई धर्म है और न पर निन्दा से बढ़कर कोई पाप। हे तात ! अब मानस रोग सुनो। व्याधियों की जड़ मोह

(अज्ञान) हैं। काम ही बात, लोभ ही वितकफ और क्रोध ही छाती को जलाने वाला पित्त है। ये तीनों जब एक ही प्राणी को एक साथ ग्रस लेते हैं अर्थात तीनों कुपित हो जाते हैं तभी सन्निपात होता है।

मोह सकल व्याधिन कर मूला तिन्ह ते पुनि उपजे वहु सूला
काम बात कफ लोभ अपारा क्रोध पित नित छाती जारा
प्रीति करहिं जब तीनिउ भाई उपजै सन्यपात दुख दाई

हर्ष और विषाद ही अनेक प्रकार के कण्ठमाला घेंघा आदि रोग हैं। ममता ही दाद है, ईर्ष्या ही खुजली है। दुष्टता ही कुष्टरोग है। अहंकार ही दुखदाई गठिया रोग है। दम्भ, कपट, मद और अभिमान ही नसों के रोग हैं। तृष्णा ही जलोदर, तीनों इच्छाएं तिजारी ज्वर, मत्सर (द्वेष) और अविवेक ही दो प्रकार के ज्वर है। ये सभी असाध्य हैं। और सभी जन इनसे ग्रसित हैं। इन सबसे बचने का एक मात्र उपाय रामजी की कृपा ही है :—

राम कृपा नासहि सब रोगा। और रामजी की कृपारूपी संजीवनी तभी प्राप्त होती है जब—

सद्गुरु बैद वचन विस्वासा संजम यह न विषय कै आसा
रघुपति भगति संजीवनी मूरी अनूपान श्रद्धा अति रूरी

सद्गुरु ही ऐसा वैद्य बन आये कि उनके वचनों में रोगी को विश्वास हो और रोगी विषय वासना को छोड़ संयम धारण करे। रामजी की भक्ति ही संजीवनी औषध हैं। जो पूरी श्रद्धा के साथ खाई जाय। हे गरुड़जी ! तुम इसे दृढ़ता से मानो कि रघुपति भगति बिना सुख नाही।

इतना सारा रहस्य जान कर गरुड़जी का मोह दूर हो गया और वे हृदय में रामजी को धारण कर काग भुशुण्डिजी को शीश नवा कर वैकुण्ठ चले गये। वह एक अति दुर्लभ एवं सार भूत संवाद है। इस समस्त संवाद का निचोड़ यही है कि—

बारि मथे वरु होई घृत सिकता ते बरु तेल
विनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल

पानी के मथने से भले ही घी निकल आवे और बालू से तेल लेकिन बिना रामजी के भजन के कोई भी भव सागर को पार नहीं कर सकता, यह अटल सिद्धान्त है।

राम का शील - मणि गंगा

विश्व वंदनीय संत महाकवि गोस्वामी तुलसी दास जी की अविनश्वर रचना राम चरित मानस एक प्रकाशमान प्रदीप की भांति जन-जन के मानस की श्रद्धा रूपी दीवट में शताब्दियों से जगमगा रहा है। चार शताब्दियाँ हहराती हुई निकल गई और न जाने कितनी वार इस संसार का इतिहास ही नहीं अपितु भूगोल भी वदला, पर इस महा कवि ने हमारी श्रद्धा के दीवट पर जिस प्रदीप को प्रज्ज्वलित कर रख दिया उसका प्रकाश आज तक मन्द नहीं पड़ा। यही नहीं, उस प्रदीप से न जाने कितने और प्रदीप प्रज्ज्वलित किये गये, पर उसकी ज्योति प्रतिपल और अधिक दीप्त होती रही।

रामचरित की अमरता एवं उसकी सर्व व्यापकता का रहस्य क्या है और इस ग्रन्थ शिरोमणि को किन मणि अक्षरों से गढ़ा गया है कि वह युगों से जन-जन का हृदयाहार वना हुआ है ? इन सवका एकमात्र उत्तर है—मानस में अमृत तत्वों से युक्त लोक-मंगल की पावन सुर सरिता का अवतरण। गोस्वामीजी ने मानस के माध्यम से सर्व साधारण के करों में एक ऐसा समुज्ज्वल दर्पण दे दिया है कि मानव मात्र उसमें अपने अन्तर की सूक्ष्माति सूक्ष्म पवित्र भावनाओं का दर्शन करता है।

पर इस अमर ग्रन्थ की सर्वव्यापकता एवं अविनश्वरता का एक रहस्य और भी है और वह रहस्य यह है मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम का पावन नाम एवं निर्मल भक्ति की गंगा का निरन्तर प्रवाह। भगवान राम तुलसी के एक मात्र आराध्य देव हैं जो शुद्ध परात्पर ब्रह्म होते हुए भी कहीं समाज के सवसे दलित जनों सुग्रीव एवं हनुमान को हृदय से लगाते हैं तो कहीं केवट के हठ के सम्मुख — सोई करु जेंहि नाव न जाई। कहकर मुस्कुरा देते हैं। इतना ही नहीं, वे कहीं तो शवरी ऐसी दीन-हीना भीलनी के सुखे गुदे बेर खाकर ही पूर्ण तृप्त होते हैं।

भगवान राम की यही सहजता उनके चरित्र को सर्वव्यापक एवं सर्व ग्राह्य वना देती है। युगों से अनेक कवि उनके वल, वीर्य, पराकर्म, सौन्दर्य, ज्ञान आदि गुणों का गान करते चले आ रहे हैं। लेकिन गोस्वामी तुलसी दास ने उनके चरित्र में ऐसी विशेषता जोड़ दी कि उनके राम सर्व साधारण के आराध्य, सखा एवं महाप्रभु बन गये। नहीं तो किसी गरीव का साहस था कि रावण ऐसे प्रतापी योद्धा का वध करने वाले राम के समीप जाता। यदि गोस्वामीजी उनके चरित्र में शक्ति एवं सौन्दर्य के साथ शील का निरुपण न करते तो अवतार का प्रयोजन ही असफल हो जाता। तुलसी स्वयं तो

पीड़ित थे ही, उनका देश एवं समाज भी पीड़ित था। तुलसी ने अपने दैन्य को वैयक्तिक धरातल पर नहीं रखा, उसमें समाज का दैन्य समाया हुआ है। राम के कोमल, मृदुल एवं शील सम्पन्न स्वभाव के कारण ही तुलसी उनके समीप पहुंचने का साहस करते हैं—

मृदुल सुभाउ सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावो।
(विनय० १४२।१८।२०)

और हम सब साधारण जन गोस्वामी जी की अंगुली पकड़ कर ही राम के समीप पहुंचते हैं। कारण गोस्वामीजी को वह रहस्य, वह गुर ज्ञात था जो राम के प्रेम को प्राप्त कराता है—

सूधे मन, सूधे वचन सूधी सब करतुति।
तुलसी सूधी सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति
(दोहा०)

बड़ा ही सरल गुर है। उनके रामको प्राप्त करना है तो मन से, वचन से एवं कर्म से सरल बनो। टेढ़ापन या किसी प्रकार का छल-कपट अथवा पेंच लगाना उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं है। उनके रामकी स्पष्ट घोषणा है—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

राम के चरित्र को और उनके प्रति भक्ति भाव को सर्व ग्राह्य बनाने के उद्देश्य से ही गोस्वामी जी ने परम्परागत राम कथा का अनुसरण नहीं किया। वाल्मिकी के राम अपनी वंश मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिए व्यग्र रहते हैं, पर तुलसी के राम भक्त जनों के रंजन के लिए। वे शत्रु के सम्मुख भी अपने शील को छोड़ते नहीं हैं। इसलिए तुलसी ने सीता—निर्वासन प्रसंग को छोड़ दिया, कारण कि यह उनके आराध्य के शील के विरुद्ध था। यही सब कारण थे कि उनके राम जन-जन के आराम एवं आत्माराम बन गये—

ये प्रिय सबहि जहाँ लोग प्रानी।
(मानस०)

आज उनके राम जन-जन के हृदय में, कण्ठ में एवं रसना में बसे हुए हैं। न जाने कब से राम के नाम का प्रयोग पारस्परिक नमस्कार या शिष्टाचार के रूप में हो रहा है। साधारण जन राम के नाम की मणि अपनी रसना पर धारण किये रहते हैं। इससे बाहर एवं भीतर दोनों को प्रकाश मिलता है—

राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेर हूं, जौ चाहसि उजियार ।।

तुलसी के रामचरित मानस में राम का नाम मणि समान दमक रहा है और भक्ति की धारा परम पवित्र सुरसरिता गंगा नदी के समान लहरा रही है—

राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा।

जिस प्रकार गंगाजी सर्वकाल में सबके लिये सर्वत्र सुलभ है, उसी भांति तुलसी की भक्ति भी सर्व व्यापक है। उनकी भक्ति-गंगा में नहा कर हम सब मुद मंगल का वरदान प्राप्त करते हैं। संक्षेप में उनका रामचरित मानस वह पावन भाव भूमि है, जहां भक्ति की गंगा तरंगित हो रही है और उसके दोनों कूल 'रा' एवं 'म' की मणियों से जगमगा रहे हैं। तुलसी की यह मणि गंगा भारतीय वांग्मय को एक अनुपम अवदान है। कोटि-कोटि मानव चार शताब्दियों से भी अधिक समय से राम नाम रूपी मणि को अपनी रसना के देहली द्वार पर रख कर वाह्य एवं आंतरिक प्रकाश को प्राप्त कर रहे हैं तथा भक्ति की सुर सरिता में नहा कर अपने को धन्य एवं अनन्य बना रहे हैं।

गोस्वामीजी के अनुसार राम भक्ति का अपार सुर सरिता प्रवाहित है। कम तैराक या तैरने की कला से बिलकुल हीन व्यक्ति भी किनारे के घाटों पर नहा लेता है और चतुर तैराक भी उसका वार-पार नहीं पाता है। जो जितना भक्ति-चतुर है वह उतना ही कुशल तैराक है। हाथी के समान ज्ञान से वोझिल तो उस जल प्रवाह में वह जाता है पर छोटी मछली के समान जल से अभिन्नता रखने वाला कुशलता से तैर लेता है।

जो जेहि कला कुसल ताकहं सोह सुलभ सदा सुखकारी
सफरी सनमुख जल प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी ।।

गोस्वामीजी ने कण-कण में राम के ही दर्शन किये। उनके लिये समस्त जगत राममय है अतः प्रणम्य है।

सीय राम मय सब जग जानी करउं प्रनाम जोरि जुग पानी

वे कहते हैं कि जैसे चींटी का प्रेय शर्करा होती है, वह चाहे बालू में ही क्यों न मिली हो—चींटी उसे खोज लेती है। शर्करा के रस की वह पूर्ण रसज्ञा है। तभी तो कहीं भी हो उसे खोज लेती है।

ज्यों सर्करा मिलै सिकता महं बलतेन कोनु बिल गावै
अति रसग्य सूच्छम पिपोलिका बिनु प्रयास ही पावै

तुलसी ने जड़ एवं चेतन में राम के दर्शन किये प्रत्येक ध्वनि में राम के नाम को सुना। वे सर्व व्यापक हैं। उन्हें पाने के लिये केवल राम रस का प्रेम होना चाहिए।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना

जिस प्रकार शर्करा की रसज्ञता के कारण चींटी उसी के पास पहुंचती है उसी प्रकार राम रस में पूर्ण निमग्न जन उन्हें पा लेता है। कण-कण में उनके दर्शन करता है और प्रत्येक लहर में एवं वायु के प्रत्येक झोंके में उन्हीं के पावन नाम का संकीर्तन सुनता है।

गोस्वामीजी के समान अपने अराध्य देव से अन्यतम तादात्यम्यता किसने स्थापित की है? किसने अपने आराध्यदेव के नाम से इतनी अनन्यता स्थापित की है? वे राम-नाम के इतने मतवाले बन गये थे कि उन्होंने कह ही तो दिया—

तुलसी जा के मुखानि तें धोखेउ निकसहि राम
ताके पग की पगतरी मोरे तन को चाम

यदि किसी के मुख से धोखे में ही राम का नाम निकल जाए तो मेरे शरीर का चमड़ा खींच लीजिए और उसके पैर के जूते बना दीजिए। अब पाठकगण ही चिंतन करें कि विश्व की किस भाषा के साहित्य में किस भक्त

की अपने आराध्य के प्रति ऐसी अनन्यता है ? गोस्वामीजी ने अपने आराध्य देव राम को जितना पहिचाना, उतना किसी ने भी अपने आराध्य को न जाना और न शुद्धाति शुद्ध परात्पर ब्रह्म के समान प्रतिष्ठित ही कर सका। गोस्वामीजी के राम निर्गुण होते हुए भी भू भार हरने के लिए सगुण रूप धारण करते हैं—

अज अद्वैत अनाम अलख रूप गुन रहित जो
मायापति सोई राम भगति हेतु नर तनु धरेउ

'गोस्वामीजी का रामचरित मानस जिस भांति बड़े बड़े विद्या वाचस्पतियों के लिए अगम है और एक साधारण भक्तजन के लिए रंजन का हेतु है, उसी भाँति उनके राम भी है'। मानस के सम्वन्ध में गोस्वामीजी की घोषणा है—

बुध विश्राम सकल जन रंजनि रामकथा कलि कलुष विभंजनि

रामचरित मानस पण्डितों के पाण्डित्य का विश्राम स्थल है। इसके आगे उनके पाण्डित्य की गति नहीं है। लेकिन सभी जनों का रंजन करने वाली भी है। गोस्वामीजी को भलीभांति ज्ञात था कि—

जो प्रबन्ध बुध नहिं आदर हीं सो श्रम वादि बाल कवि करहीं

जो रचना बुद्धिमानों के द्वारा समादृत न हुई वह व्यर्थ है। उनके राम भी वैसे ही हैं। बड़े-बड़े योगी, यती, तपस्वी, देवता एवं ब्रह्मा विष्णु महेश भी उनका भेद नहीं जान सके हैं। वे करोड़ों काल देवता के समान दुस्तर हैं—

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरन्त।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवन्त।।

उनके राम ऐसे दुर्धर्ष हैं। लेकिन वही राम बानरों को अपने से ऊंचा स्थान दे देते हैं।

प्रभु तरुतर कवि डार पर ते किय आपु समान
तुलसी कहूं न राम सो साहिब सील निधान

ध्यान धर कर भी जिनको बड़े-बड़े मुनि नहीं पाते हैं वही लंका में वानरों के साथ विनोद कर रहे हैं।

मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति-नेति कह बेद
कृपा सिन्धु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक विनोद

जिस प्रकार गोस्वामीजी का मानस अद्भुत है उसी प्रकार उनके राम भी बड़े विचित्र है। गोस्वामीजी के राम का चरित्र हमें बतलाता है कि बड़ों का बड़ापन बड़ों से व्यवहार करने में नहीं झलकता है।[1] वह छोटों से अपनापन निभाने में निखरता है। यह सब उनके शील की ही अपार महिमा है। त्रिदेवों के लिये भी अगम राम केवट ऐसे साधारण जन के लिए सुगम बन गये। महर्षि बाल्मीकि राम की स्तुति करते हुए कहते हैं—

जगु पेखन तुम्ह देखनि हारे
बिधि हरि सम्भु नचावनि हारे
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा
औरु तुम्हरि को जाननि हारा

[2]हे राम! इस दिखलाई पड़ने वाले दृश्य जगत की सारी गतिविधियों को यदि कोई देखने वाला कोई है तो एक आप ही हैं। आप ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर को भी बैठे-बैठे नचाया करते हैं, उनसे जो चाहे करा लेते हैं। जब वे तक आप का भेद नहीं जान पाये तब भला और दूसरा कैसे आपको जान सकता है।

यदि राम सचमुच ऐसे हैं तो फिर साधारण जनों के लिये पूर्ण अगम हैं। पर नहीं, वाल्मीकी तुरन्त कह देते हैं :—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई
जानत तुमहिं तुम्हइ होइ जाई

आपको वही जान सकता है, जिसे आप जानने की शक्ति दे दें। पर इसमें भी एक कठिनाई है। जब वह आपको जान लेता है तब वह आपका

---

1. तुलसी के राम : श्री विष्णुकांत शास्त्री (राष्ट्रमित्र : अप्रैल : १९७९)
2. त्वं द्रष्टासि जगद् दृश्यं नटोऽसि रघुनन्दन
भेद ते नैव जानन्ति ब्रह्मविष्णु शिवा आपि ।। (शिव सं०)

ही रूप बन बैंठता है। वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है। आप में ही समा बैंठता है, इसलिए आपके विषय में बता नहीं पाता है। तब उनके जानने का कोई और उपाय है ? वाल्मीकी कहते हैं कि— .

तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन
जानति भगत-भगत उर चन्दन

हे रघुनंदन राम ! भक्तों के हृदय को शीतल करने वाले चन्दन ! जब आपकी कृपा होती है तभी भक्त आपको ठीक-ठीक जान पाते हैं। लेकिन साधारण जन तो इसका प्रभाव चाहते हैं। क्या कोई ऐसा प्रभाव है कि किसी भक्त पर उसकी कृपा हुई हो और वह उनका भेद जान गया हो ? प्रभाव है, केवट ! जिन परात्पर राम का मर्म ब्रह्म, विष्णु एवं शंकर भी नहीं जानते हैं उन्हीं को जानने का दावा केवट करता है—

मांगी नाव न केवटु आना
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना

केवट बड़े अधिकार से कहता है कि तुम्हारा मर्म मैं जानता हूँ। (आप साक्षात ब्रह्म हैं। यह न समझिये कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ) वह आगे कहता है कि मैं ही नहीं सभी कह रहे हैं—

चरन-कमल रज कई सब कहई
मानुष करनि मूरि कछु अहई

आपके कमल के समान इन कोमल चरणों में लगी धूल में कुछ ऐसी (जादू की) जड़ी है कि वह जिसे छू जाए (जो उसकी शरण में चला जाए) उसे सच्चा मनुष्य बना डालती है। उसमें ऐसी भावना भर कर पवित्र कर देती है कि वह सबकी भलाई करने लगता है और सबको चाहने लगता है। केवट प्रमाण भी प्रस्तुत कर देता है—

छुअत सिला मइ नारि सुहाई

आपके चरणों का धूल का स्पर्श पाते ही पत्थर की पटिया भी [गौतम की] सुन्दर (पवित्र) नारी बनकर उठ खड़ी हुई। राम केवट की इस प्रेम

लपेटी अटपटी बानी पर राम रीझ गये। राम को और चाहिए क्या ? वे तो प्रेम के भूखे हैं।

रामहि केवल प्रेम पियारा।

और वे इसी प्रेम के कारण शवरी के मामले में तो हद ही कर देते हैं, शेष महेश, मुनीश, अहीश सभी की लाज वाले राम जब तक शवरी के सूखे बेर नहीं खाते उनकी भूख ही नहीं मिटती है।

दानव देव अहीस महीस महा मुनि तापस सिद्ध समाजी
जग जाचक दानि दुतीय नहीं तुम ही सब की सब राखत बाजी
एते बड़े तुलसीस तऊ सवरी के दिये बिनु भूख न भाजी
राम गरीब नेवाज ! भये हौ गरीब ने वाज गरीब नेवाजी
(क० ७।९५)

यह है तुलसी के राम का शील जिसके बल पर जिसके भरोसे ही उन्होंने डरे हुओं, टूटे हुओं को अभय का मंत्र दिया—

तुलसी जास परिहरि प्रपंच सब नाउ राम पद कमल माथ

पतन का ऐसा कोई गहरा गर्त नहीं है जहाँ राम की करुणा न पहुंचती हो। कोई इतना बड़ा अधपुंज नहीं है जो उनकी कृपा से धुल न सकता हो। अतः गोस्वामी जी कहते हैं कि डरो मत, छल प्रपंच और पेंच बाजी छोड़ कर रामजी की शरण में जाओ तुम्हारे कोटि कोटि के पाप-संताप धुल जायेंगे। उनके रामजी स्वयं कहते हैं—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं जन्म कोटि अघ नासहिं तबही ..

राम तो घट घट में बसे हुए हैं वे जानते हैं कि पापियों को मेरा भजन अच्छा नहीं लगता। विभीषण यदि दिल का खोटा होता तो क्या उनके सम्मुख आ सकता था ?

जो पै दुष्ट हृदय सोइ होई मोरे सनमुख आव कि सोई

वे शरणागत को कभी नहीं त्यागते हैं भले ही उस पर विश्व द्रोह का भारी पाप हो। यह रामजी का स्वभाव है। वे विभीषण से कहते हैं—

सुनहु सखा निज कहउं सुभाऊ जान भुसुण्डि सम्भु गिरिजाऊ
जौ नर होई चराचर द्रोही आवइ समय सरन तकि मोही
तजि मद मोह कपट छल नाना करौं सद्य तेहि साधु समाना
जननी जनक बंधु सुत दारा तन धन भवन सुहृद परिवारा
सब कै ममता ताग वटोरी मम पद मनहिं बाँधि बर डोरी
समदरसी इच्छा कछु नाहीं हरष सोक भय नहिं मन माहीं
अस सज्जन मम उर वस कैसे लोभी हृदय वसै धन जैसे
तुम सारिखे संत प्रिय मोरे धरौ देह नहिं आन निहोरे

हे सखा! मैं तुम्हें अपने स्वभाव का परिचय दिये देता हूं, जिसे काक भुशुण्डि शंकर एवं पार्वती अच्छी प्रकार जानते हैं। यदि कोई मनुष्य जड़ और चेतन का द्रोही होकर भी भयभीत होकर मेरी शरण में आ जाए और अपने मन से मद, मोह, कपट, छल आदि निकाल दे, तो मैं उसे तत्काल साधु के समान बना देता हूं। जो पुरुष अपने माता-पिता, बन्धु, पुत्र, स्त्री, तन-धन, भवन और प्रिय परिवार इन सबको ममता के डोरे समेट कर और उन सबकी डोरी बांट कर उसमें अपना मन लपेटता है और उसे मेरे चरणों में वांध देता है (सबके प्रति ममता-भाव हटा कर केवल मेरे चरणों से अविछिन्न प्रीत रखता है), जो समदर्शी है, जिसके मन में कोई कामना नहीं है, जिसे हर्ष, शोक, भय आदि कुछ भी नहीं है वह सज्जन मेरे हृदय में उसी प्रकार जमकर आ बसता है जैसे लोभी के हृदय में सदा धन बसा रहता है। मुझे तो तुम्हारे जैसे सन्त प्रिय हैं. अन्य किसी का एहसान लेने के लिये मैं शरीर धारण ही नहीं करता। [1]मेरा अवतार तो तुम्हारे जैसे सन्तों की रक्षा के लिये ही होता है।

यह तुलसी के राम की स्वष्ट घोषणा है और इस घोषणा के बहाने स्वयं रामजी ने अपने अवतार का प्रयोजन भी स्पष्ट कर दिया। राम के इसी शील ने उन्हें सर्व व्यापक, सर्व ग्राह्य इष्ठदेव बना दिया। गोस्वामी जी को भलीभांति ज्ञात था कि शील ही वह गुण है जो समाज की उन मार्यादाओं का स्थापन करता है, जिनसे धर्म का स्वरूप निर्मित होता है। युग पुरुषों का जीवन ऐसे ही शील से अनुप्राणित होता है। वह जनता के लिये साक्षात धर्म वन जाता है और उसके अनुकरण अनुकीर्त्तन एवं अनुचिंतन से सात्विक विभूतियाँ प्राप्त होती है। इसीलिए बाल्मीकी ने जहां राम को 'विग्रहवान धर्म' कहा है वहां गोस्वामीजी ने 'धर्म धुरीष' 'धर्मसेतु' आदि कहा है।

१, परित्राणाय साधुनां जातो रामः स्वयं हरि। —पुलस्त्य संहिता

रामचरित मानस में ऐसे ही राम के चरित्र का गायन हुआ है और ऐसा गायन ही महाकाव्य के मानदण्डों का विधायक होता है। मानस में स्थान-स्थान पर राम के शील के उल्लेख के अतिरिक्त विनय पत्रिका में एक पद है—

सुनि सीतापति शील सुभाउ

(वि० प० १००)

श्री सीतानाथ रामजी का शील स्वभाव सुनकर जिसका शरीर पुलकित नहीं होता नेत्रों में प्रेम के आंसु नहीं भर आते, वह मंद भाग्य धूल फांकता फिरे तभी ठीक है। गोस्वामी जी के रामजी के समान गरीबों को निहाल करने वाला कौन है। वे कहते हैं—

गनिका, कोल, किरात आदि कवि इन्हते अधिक वाम को
वाजिमेध कव कियो अजामिल तज गायो कव साम को

(विनय० ९९)

गणिका (जीवन्ती) कोल, किरात (गुह निषाद) तथा आदि कवि बाल्मीकि इनसे बुरा कौन था ? अजामिल ने कब अश्वमेघ यज्ञ किया था और गजराज ने कब सामवेद का गान किया था ? और फिर रामजी का इनसे स्वार्थ ही क्या था ? पर उन्होंने सबको पवित्र बना दिया। यह रामजी का शील ही तो है। शील के जितने भी अंग हैं वे सब रामजी में अपने पूर्ण रूप में विद्यमान हैं। वे अक्रोधी हैं, कभी किसी ने उनके मुखचन्द्र पर क्रोध की रेखा तक नहीं देखी। वे सौहार्द से पूर्ण हैं—खेल में जीत कर भी हार मान लेते हैं। पूर्व पापों को तो वे भुला देते हैं और थोड़ी सी विनय पर ही चरण कमलों में (अहल्या को) आश्रय दे देते हैं। क्षमा और सहन शीलता (परशुराम के प्रसंग में) उदारता (कैकेयी के विषय में) कृतज्ञता (हनुमान के प्रति) अदोष दर्शन एवं गुण ग्राहकता (सुग्रीव और विभीषण के प्रसंग में) एवं यशोलिप्सा में अनाशक्ति आदि गुण मानस के अयोध्या से लंका तक जन्म के आंगन से रण के प्रांगण तक, स्वजन-परिजन से अरिजन तक, सभ्य ऋषि मुनियों एवं नागरिकों से जंगली भालु-वानरों तक, अनुरागी से वीतरागी तक पुण्यात्मा से पापात्मा तक सभी को प्रभावित करते हैं। उनकी वन यात्रा वस्तुतः शील की ही दिग्विजय, लंका-विजय भी उनके शील की जय है। उनके धर्म रथ की ध्वज पताका सत्य एवं शील है—

सत्य सील दृढ़ ध्वाजा पताका

मानस में चित्रित राम के शील की छवियां हृदय पर अमिट छाप छोड़ती है। धनुर्भङ्ग के अवसर पर दर्प एवं क्रोध से भरे परशुराम को राम का उत्तर आग पर अमृत छींटा ही था—

राम मात्र लघु नाम हमारा परसु सहित बड़ नाम तोहारा

अपनी लघुता और अपने प्रतिद्वन्द्वी की महत्ता को स्वीकारना उनके सहजशील का ही प्रकाशन है। इसी प्रकार वे वन में अपने शील का परिचय देते हुए जटायु की अन्त्येष्टि पिता के समान करते हैं, बाली की करुणा मिश्रित वाणी सुन कर प्राण-दान देने को तैयार हो जाते हैं। प्रबल प्रतिद्वन्द्वी रावण का दाह संस्कार परम सम्मान के साथ कराते हैं और अयोध्या लौटने पर सर्व प्रथम कैकयी से ही भेंट करते हैं।

प्रभु जाना कैकई लजानी प्रथम तासु गृह गए भवानी

उनके शील की सबसे कठिन परख चित्रकूट में होती है। वे पिता के आदेश पालन के नियम को भरत के प्रेम पर न्योछावर कर देते हैं—

तात तुम्हहिं मैं जानउं नीके करौं काह असमंजस जी के
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी
तासु बचन मेटत मन सोचू तेहिते अधिक तुम्हार संकोचू
तापर गुरु मोहि आयसु दीन्हा अवसि जो कहहु चहउं सोइ कीन्हा

मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु
सत्य संघ रघुवर बचन सुनि भा सुखी समाजु
(२।२६४)

—देखो भाई जहां तक मेरी बात है, मैं तो तुम्हें भलीभांति जानता हूं कि तुम्हारे हृदय में छल कपट नहीं है। पर मैं करूं तो क्या करूं? बड़े ही धर्म संकट में आ फंसा हूं। जिन महाराज दशरथ ने मुझे त्याग कर सत्य की रक्षा की और मेरे ही प्रेम के कारण शरीर भी त्याग दिया, उनकी बात टालते हुए मुझे उलझन हो रही है। पर उससे भी अधिक तो तुम्हारा

संकोच है कि कहीं ऐसा कार्य न कर बैठूं कि तुम्हारे दिल को ठेस पहुंचे। इस पर भी गुरुदेव की आज्ञा है कि भरत जो कहे वही करो। इसलिए अब तो तुम्ही निर्णायक हो जैसा समझो कहो, मैं करूंगा। तुम प्रसन्न चित्त होकर बेझिझक कह डालो। भरत को निर्णय का पूरा अधिकार दे देना ही श्री रामजी का अपने भक्त पर गहरे विश्वास का प्रमाण है।

रामजी के प्रवल प्रतिद्वन्द्वी रावण का भाई विभीषण शरण में आता है और थोड़ी सी विनय करता है, लेकिन पाता क्या है—लंका का विशाल एवं सम्पन्न राज्य। जो संपदा रावण ने शंकर पर दसो शीश अर्पित करके प्राप्त की वही वे विभीषण को देते हैं, पर संकोच के साथ कि कहीं यह भी कम तो नहीं है वे कहते हैं 'हे प्रिय सखा यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है फिर भी मेरा दर्शन अमोध है। वह व्यर्थ नहीं जाता है। सारी सम्पदा विभीषण को उठाकर दे डाली और सोच रहे हैं कि मैंने तो इसे कुछ भी नहीं दिया और जो कुछ दिया भी है वह इसकी भक्ति की तुलना में कुछ भी नहीं है।

राम के शील का एक और उज्ज्वल दर्शन उस समय होता है जब मेघनाद से युद्ध करते समय लक्ष्मण मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं। वे विकल हो गये! शरीर तक छोड़ने का विचार कर लिया पर नहीं छोड़ा। तो क्या शरीर न छोड़ने का कारण माता कौशल्या का मोह वात्सल्य या सीता का स्नेह था? नहीं, उनको तो यही चिन्ता थी कि 'है काह विभीषण की गति' बांह विभीषण की उन्होंने थाम ली, अब छोड़े कैसे। उन्हें शोच है कि शरणागत को मैं कोई व्यवस्था नहीं कर सका—

माई को न मोह छोह सीय को न तुलसीस
कहैं मैं विभीषण की कछु न सबील की
लाज बांह बोले की नेवाजे की संभार सार
साहेब न राम से बलैया लेऊँ शील की।

ऐसे शीलवान एवं संकोची प्रभु को छोड़कर दूसरे की शरण में कौन जाना चाहेगा? वही चाहेगा जो बिना पूँछ एवं सींग का पशु होगा।

अस प्रभु छाड़ि भजहि जे आना तेनर पशु विनु पूँछ विसाना

तुलसी के रामजी के समान इस लोक में कौन उदार है जो बिना सेवा के हा दीनों पर द्रवित होकर करुणा की सुधा बरसा दे। वे अपार करुणा

वरुणालय है। उनकी कृपा का क्षीर सागर उमर रहा है तटों की वाहों में भी समा नहीं पा रहा है। किसी ने थोड़ी भी विनय की कि परमगति तक देने में उन्हें संकोच नहीं है।

ऐसो को उदार जगमाही
विनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं

उनका वाना ही गरीवों को निहाल कर देता है। तभी तो गोस्वामी रामजी के चरण कमल छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहते हैं। उनका मन रूपी भौंरा श्री रामजी के चरण कमलों की भक्ति माधुरी दिनरात पान करता है। उनके रामजी तो हठपूर्वक चुन-चुन कर नीचों का उद्धार करते हैं। ऐसे प्रभु के हाथों में वे अपने को सौंप देते हैं। वे रामजी से पूछते हैं। वे रामजी से पूछते हैं कि यदि आपके श्री चरणों से भी बढ़कर कोई आश्रय स्थल हो तो मैं चला जाऊँ। रामजी चुप है। कुछ मुस्कुराते हैं, पर गोस्वामी जी कम चालाक नहीं हैं। रामजी के ही विषय में रामजी से पूछ कर रामजी को निरुत्तर कर देते हैं–

जाऊं कहाँ तजि चरण तुम्हारे
काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे
कौन देव बड़ाई हित हठि-हठि अधम उधारे
खग मृग व्याध पषान विरप जड जवन कवन सुर तारे
देव दनुज मुनि नाग मनुज सम माया विवस विचारे
तिनके हात दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे

रामजी अव क्या कुछ वोल सकते हैं। गोस्वामीजी जीत जाते हैं और शील सिन्धु रामजी हार जाते हैं भक्त भगवान से वड़ा हो जाता है।

राम ते अधिक राम कर दासा

तुलसी ने अपने रामजी को पहिचाना भी खूब था और जितना उन्होंने अपने आराध्य को जाना था उतना अन्य किसी भी भक्त ने नहीं। तभी तो वे स्वयं राम बन गये। राम नाम ही उनका मन्त्र था, राम नाम ही उनका सबल, आधार एवं जीवन था। राम को छोड़ कर उन्हें किसी से आशा भी

नहीं की और यदि की है तो केवल उससे यही मांगा है—राम चरन रति देहू ॥ राम का नाम ही उनके लिए भरोसा था, बल था, आस था, विश्वास था और था उनके आत्माराम रूपी चातक के लिये घनश्याम जो स्वातिका अमृत बूंद बरसाता है।

एकु भरोसो एक बल एक आस विश्वास
एकु राम घनस्याम हित चातक तुलसी दास

गोस्वामीजी ने अपने जीवन काल में ही राम नाम के अनेक चमत्कार दिखा दिये थे। एक कथा है—गोस्वामीजी जब काशी में थे तो एक प्रेमी भक्त गंगापुर से उनसे मिलने आया। कुछ देर तक रुकने के बाद जब वह जाने लगा तो घाट पर नौका नहीं थी। उसने गोस्वामीजी की ओर देखा तो उन्होंने कहा कि रामजी का नाम लेकर तो लोग भवसागर के पार हो जाते हैं, तुम गंगाजी को भी नहीं पार कर सकते? रामजी का नाम लेकर वह गंगाजी में कूद गया, पर अभी थोडी ही दूर गया होगा कि डूबने लगा। गोस्वामीजी तट पर खड़े होकर यह देख रहे थे। जब उसने सहायता के लिये पुकारा तो गोस्वामी जी ने कहा कि राम का नाम लो। उसने कई बार राम का नाम लिया पर भंवर में फंसता ही जा रहा था। तब गोस्वामीजी ने जोर से कहा 'अरे पागल! तू यह बोल कि तुलसी के रामजी मुझे पार कर दो। उसने ऐसा ही कहा और भँवर के बाहर ही नहीं निकल गया अपितु पार भी हो गया। उसके आश्चर्य का टिकाना न रहा कि क्या गोस्वामीजी के रामजी उसके रामजी से भिन्न हैं। मेरे रामजी तो नहीं पार करा सके लेकिन जैसे ही मैंने कहा कि तुलसी के राम पार कर दो, मैं पार हो गया।

दूसरी बार जब वह गोस्वामीजी के पास आया तो उसने यही प्रश्न किया। गोस्वामीजी मुस्कराए। उन्होंने दूसरे दिन आने को कहा। जब दूसरे दिन आया तो गोस्वामीजी ने उसको एक हीरा देकर कहा कि इसे ले जाओ और किसान, दुकानदार, सोनार एवं जौहरी चार जनों से इसकी कीमत पूछ कर आओ। वह किसान के पास हीरा लेकर गया। किसान ने हीरा देखा और कहा कि पांच रुपये ले लो, मैं इसे खरीद कर अपने हल की मुटिया में लगा लूंगा पत्थर अच्छा है। इसके बाद वह दुकानदार के पास गया। उसने कहा कि दस रुपये ले लो। यह मेरे किस काम का है इसे या तो बट-खरे के रूप में प्रयोग करूंगा या घर में बच्चों को खेलने के लिये दे दूंगा।

फिर वह सोनार के पास गया। उसने हीरा देख कर कहा कि पचास रुपये ले लो, इससे अधिक मैं नहीं दूंगा। इसे तोड़ कर जेवरों में जड़ दूंगा और यह किस काम का है अन्त में वह जौहरी के पास गया। उसने हीरा देखकर कहा—अरे यह तो अनमोल है तुम जो मांगोगे मैं दूंगा। आज तक मैंने ऐसा रत्न देखा नहीं है।

वह गोस्वामीजी के पास लौट आया और चारों जनों की कही हुई कीमत बता दी। गोस्वामीजी ने कहा—अच्छा! अब तुम्हीं कहो कि सबने एक ही हीरा देखा। उसने कहा—हां। तब जब हीरा एक था तो सबने इसका मूल्य अलग अलग क्यों बताया? उनका प्रश्न था। उसने कहा कि जिसने जितनी कीमत आँकी उतनी ही कही। गोस्वामीजी ने कहा—तुम्हारे प्रश्न का यही उत्तर है। रामजी एक हैं, पर जो उन्हें जितना जान सका उतना ही उनका मूल्य आंक सका।

वह चुप हो गया। उसे सन्तोषजनक उत्तर मिल गया था। राम जी एक ही हैं, पर उन्हें जो जितना जान सका, उतना ही उनके महत्व को आंक सका। गौस्वामीजी राम नाम रूपी हीरा के सच्चे पारखी थे। उनका जौहरीपन रामजी भी जानते थे, इसीलिए जब उनके मित्र ने 'तुलसी के राम' का नाम लिया तो रामजी ने भी उनकी लाज रख ली। रामजी को अपने प्रण की चिन्ता नहीं रहती है। उन्हें भक्त के प्रण एवं भक्त की लाज की चिन्ता रहती है। इसी अपने इसी शील स्वभाव के कारण उन्होंने गोस्वामीजी के मित्र को पार करा दिया।

गोस्वामीजी ने अपने रामजी को जिस रूप में देखा, वह सब वर्णन से परे हैं। रामजी के नाम की जैसी महिमा उन्होंने गाई, वैसी रामजी भी नहीं कह सकते। गोस्वामीजी के मानस में राम नाम की महिमा यदि एक मणि के समान प्रत्येक पंक्ति में झलक रही है तो उनकी भक्ति परम पावन सुरसरिता बना कर सम्पूर्ण मानस को आप्लावित कर रही है। विद्वज्जनों से लेकर अनपढ़ों तक उनके रामजी का नाम अपना प्रभाव दिखा रहा है और उनकी भक्ति सुर सरिता में तो समग्र आस्था ही डूबी हुई है।

॥ समाप्त ॥